लेखिका—महारानी

शुद्धि पत्र

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

कीर्ति कुमारी
रत्नदीप।

१—	१२	६	कुर[illegible]	[illegible]
२—	२९	२५	बाढ़ो	बाढ़ी
३—	३२	३	शोतिक्री	शांतिक्री
४—	३४	२२	यहिके	याहिके
५—	३५	२०	अघवीरा	अघवीरा
६—	३६	२	यहिप्रयोजन	याहिप्रयोजन
७—	३६	२६	नष्ठ	नष्ट
८—	३७	१४	कुरूष है	कुरुप है
९—	३८	१७	कल्यालानन	कल्यानन
१०—	५५	९	वसमेकियो	वसमेंकिये
११—	५७	१४	आत्महिं	आत्माहिं
१२—	५९	१०	छिनाम्र	छीनामु
१३—	६१	२०	अरू	अरु
१४—	६३	२	ईमि	इमि
१५—	७०	२०	है स्वाधीन	स्वाधीन
१६—	७३	१६	अन्यदेवदेव	अन्यदेव—
१७—	७६	१३	तपअमु	तपअरु
१८—	७८	४	करहुँसब	कहहु अब
१९—	८०	८	मैं हूँ सिधातक	मैंहूँ सिद्धान्तक
२०—	८०	१९	वृष्णी बंश में	बृष्णि बंस में
२१—	८४	२६	उच्चासहूँ	उन्चासहूँ
२२—	१०८	२[illegible]	धाकर	धारक
२३—	१२२	१६	नासा है	नास है
२४—	१२२	१७	जसासुखाक्कत अनुभव	जस सुखक्कत अनुभव
२५—	१२२	१९	प्रथमा	प्रथम

॥ ॐ ॥

श्री ज्ञानदीप

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीमद्दीनानाथ चरण कमलेभ्योनमः

लेखिका—

सिद्ध श्री १०८ महारानी श्री लक्ष्मी जी कृपापात्राधिकारिणी श्रीमती श्री परिहारिन महारानी माँ जी साहिबा जूदेई देवी

रीवा राज्य

सम्वत् २००७

द्वितीय संस्करण

॥ निवेदन ॥

श्रीमद्भगवद् गीता महाभारत का एक महान रत्न है। जितना मान, जितना प्रचार और उच्च स्थान श्रीगीता जी का है उतना दूसरे ग्रन्थ का नहीं है। ज्ञान कर्म, उपासना भक्ति वैराग्य, योग और सांख्य आदि गम्भीर विषयों पर गीता में विवेचना की गई है। गीता मनुष्य मात्र के लिये लाभदायक ग्रन्थ है।

गीता वेद और उपनिषदों का सार है। इसमें अपूर्व चमत्कार है। गीता के सिद्धान्त पर चलने से मनुष्य दोनों लोकों को बना सकता है। गीता का जितना अधिक प्रचार हो उतना ही अच्छा है।

यद्यपि गीता के अनेक अनुवाद हो चुके हैं, तथापि सर्व साधारण के लिये सुलभ सरल एवम् सुबोध अनुवाद की अतीव आवश्यकता है।

ऐसी सुबोध अनुवादित गीता का घर घर प्रचार होना चाहिए। बिना गीता के ज्ञान के मनुष्य दुःखों से छुटकारा नहीं पा सकता। यदि मेरे इस प्रयत्न से लोगों को कुछ भी लाभ पहुँचा तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगी।

रीवा किला

लेखिका—
कीर्ति कुमारी

॥ ॐ ॥

❀ श्री ❀

❀ समर्पण ❀

हे मुकुन्द मुरारि माधवनाथ हे कमलापते ।
हे दयानिधि भक्त वत्सल दीनबन्धु जगतपते ॥
भवभीति हरिये शरण दे करुणानिधे जन ललकते ।
कलिधार प्रबल प्रवाह से अवलिन उबारहु तरसते ॥
गीता महाभारत सनेही पार्थ के फिर दरशते ।
अवनी हरण अतिभार के श्रीकृष्ण गीता बरसते ॥
हे ज्ञाननिधि गोतीत गरिमा आपकी हे भगवते ।
जय कीर्ति दीनानाथ की महिमा अपूरन सरवते ॥

× × ×

॥ दोहा ॥

श्रद्धा विनय सनेह से, कीरति दीनानाथ ।
ज्ञान दीप अर्पँ प्रभु, योगिराज यदुनाथ ॥

॥ ॐ ॥

❀ श्री ज्ञानदीप ❀

✻ श्री गीता माहात्म प्रारम्भः ✻

✻ श्रीमते रामानुजाय नमः ✻

✻ श्री गुरु चरण कमलेभ्यो नमः ✻

✻ श्री मद्दीनानाथ सरकार की जै ✻

× × ×

दोहा – छन्द वद्ध गीता करन, गुरु चरनन गति राखि ।
सो चाहति कीरति प्रभू, गुरु चर्णामृत चाखि ॥

कुण्डलिया – सुनत सुनत बहु शास्त्र के, शौनक ऋषि विज्ञान ।
श्री गीता माहात्म कृत, प्रश्न सूत प्रति आन ॥
प्रश्न सूत प्रति आन कहत शौनक रिषि राई ।
श्रीगीता माहात्म व्यास कृत, कहहु बुझाई ॥
तुम समान. नहिं अन्य सूत वक्ता गुनि लेखहु ।
कहहु सकल समझाय शास्त्र विधि यथा परेखहु ॥

दोहा—सुनि शौनक का प्रश्न तह, बोले सूत सुजान ॥
महा गोप्य प्राचीन यह, दुरलभ गीता ज्ञान ॥

कुण्डलिया—अत्युत्तम माहात्म यह, श्री गीता कृत जान ।
कहने में अवलों नहीं, आया केहु कृत भान ॥
आया केहु कृत भान, सर्व विधि कृष्ण जानै ।
किंचित अर्जुन चखा, व्यासहूँ किंचित जानै ॥
याज्ञवल्क सुकदेव कहि, जनकहुँ यही प्रमान ।
गीता कृत माहात्म में प्रभु तजि अधिक न आन ॥

दोहा—गुरुहिं नमो सुनि श्रवन यह, कीन लोक विख्यात ।
किन्तु न गीता जानहीं, अर्थ अनर्थ बतात ॥
पै जस वेदव्यास मुख, सुना कहब समझाय ।
सम्यक तो जानत वही, किंचित वेद बताय ॥

छन्द गीतिका—उपनिषद तँह गो स्वरूपी, सर्व ये होती भई ।
दुहन हारे कृष्ण प्यारे, वत्स अर्जुन मुदमई ॥
प्रथम अर्जुन पान कीन्हों, लोक में पीछे छई ।
दुग्ध गीता रूप अतिहीं, मिष्ट जग में भर दई ॥
प्रभु प्रथम अर्जुन के रथ, सारथी बनि आपही ।
जगत हित उपकार करिके, रथ चलाया नाथ ही ॥
गीता स्वरूपी अमिय प्रभु, पार्थको दिय करि दया ।
बार बार नमामि ईशहिं, राखही मोपर मया ॥

दोहा—भव सागर अति घोर यह, जो तरनो नर चाह ।
तो चढ़ि गीता तरणि में, उतरै सहित उछाह ॥

छन्द हरिगीतिका—सम्बन्ध गीता ज्ञान जो सुनता, नहीं सुचिमानसे ।
अरु मोक्ष मूरख, चाहता वह बाल खेल समान से ॥
जो दिवस निशि गीताहिं पढ़ता, और सुनता चाव से ।
वह नर नहीं है देवता है, जानता दृढ़ भाव से ॥
प्रबोध अर्जुन को तहाँ, श्रीकृष्ण गीता ज्ञान से ।
यह एक इक अध्याय अष्टादशहुँ गीता नाम से ॥
यह अष्टदश अध्याय में, श्री विष्णु कर अस्थान है ।
जो हैं परम पद खास सोई ग्रन्थ में दरसान है ॥
अहो अरजुन सगुण निरगुण निजहिं भाव प्रमाण से ।
आठ दस अध्याय मोक्ष स्थान जो करि गान से ॥
अष्ट दस अध्याय जो अमृत स्वरूपी पान करि ।
वह प्राप्त होता परब्रह्महिं आसुहीं भव पार करि ॥

दोहा—जो प्रति दिन अस्नान है, सो शरीर मल नास।
गीता रूपी सलिल में, दुखद रूप मल नास॥
छन्द—जो शास्त्र गीता को नहीं पढ़ना पढ़ाना जानता।
नहिं श्रवण कीना दूसरो से है न श्रद्धा आनता॥
अरु भावना भी है नहीं सो पुरुष इस भू लोक में।
ग्राम सूकर के सहस निज उदर पोषत तोष में॥
नहिं जानता गीता को याही हेत अधमन में बड़ा।
धिक्कार मानुष देह को अरु ज्ञान कुल को भी बड़ा॥
नहि जानता गीता को जो सौंदर्य उसका छार है।
अरु सील सुन्दर विभवयुत नर श्रेष्ठ को धिक्कार है॥
हिम्मत बड़प्पन और पूजा मान वा माहात्म को।
ज्ञान गीता जो नहीं फिर साधुताई नाम को॥
सोरठा—जो गाया नहिं ज्ञान, गीता कृत अज्ञान सो।
ज्ञान आसुरी जान। ब्यर्थ धर्म वेदान्त सब॥
दोहा—गीता धर्म मयी महा। सर्व ज्ञान कृत सार…।
शास्त्र मयी पुनि सर्वपरि ताते श्रेष्ठ अपार॥
छन्द—जो निरन्तर चाव से गीता को रटते हैं सदा।
बोलते चलते खड़े सोते वे पारायण सदा॥
तीर्थ में या नदी तट अथवा प्रभू मन्दिर में जा।
पाठपाठन करत जो निश्चय चला बैकुण्ठ जा॥
देवकी नन्दन तथा श्रीकृष्ण जी गीता में ज्यों।
सन्तुष्ट होते अमितही जप यज्ञ संयम से न त्यों॥
भक्ति पूर्वक जो सदा अध्ययन गीता को किया।
सर्व वेद पुराण शास्त्रहु ज्ञात सब विधि कर लिया॥
दोहा—श्रेष्ठ पुरुष के सनमुखै, जल थल यज्ञ महान।
भक्त प्रभू साधू सभा, पठन पाठ गति जान॥

कुण्डलिया—जो दिन दिन पढ़ता सिरी, गीता युत माहात्म।
अथवा श्रवणहिं द्वार लंहि, महा मोद सुख आत्म॥
महामोद सुख आत्म यज्ञ अग्निष्टोमादिक।
अश्वमेधहूँ किया दक्षिणा युत अहलादिक॥
जो गीता कृत अर्थ कहै अरु अपर सुनावै।
प्राप्त होय बैकुंठ परम पद दुरलभ पावै॥
दोहा—गीता कृत आदरत जो, परम भक्ति उरधार।
सविधि करै पूजन जोई, तिन कृत पुन्य अपार॥
गीता पूजनहार सों, दान मेंदिनी कीन।
सर्व तीर्थ पुनि व्रत सकल, महा सुयस फल लीन॥
चौपाई—गीता पूजन जिन गृह होई। भूत पिशाच प्रेत दुखखोई॥
मंत्र यंत्र औरन कृतकीना। अनाचार अरु दारिद छीना॥
दैहिक दैविक भौतिक व्याधी। तापत्रय पुनि अन्य उपाधी॥
होय बाध्य तिनकृत यह नाहीं। जो पूजत गीता सुख माहीं॥
जहाँ अर्थ गीता विनोदहरि। तहँ अखंड पुनिभक्ति रहत भरि॥
गीता अर्थ माहिं सब काला। लागि रहा सोइ बुद्धि विशाला॥
बस प्रारब्ध भोगि संसारा। मुक्ति लही पुनि सुखी अपारा॥
वन्धक कर्म ताहि नहिं जोई। रटि निशिदिन गीता मुद मोई॥
श्लोक—महापापादि पापानि गीताऽध्यायी करोति चेत्।
नकिंचित्स्पृशते तंतु पद्म पत्र मिवां भसा॥
जो नित श्रवण पठन उर धरहीं। सो कदापि अपराधहुँ करहीं॥
विप्रहुँ वध अघ औरहुँ नाना। सुनत पाठ सब पाप नसाना॥
कमल वारिवत लिप्त न होई। यह गीता कृत जानहुँ सोई॥
शुचि वा असुचि कैसहूँ होई। शुद्ध महाँ गीता से सोई॥
दोहा—अनाचार के पाप से, निंदित शब्द उचार।
भक्ष्य अभक्ष्यहि सेंव से, योग्यायोग्य अचार॥

जान और अनजान में, पातक जौन अपार।
ते सब गीता पाठ से, आसु होत जरि छार ॥
लेत प्रतीग्रह सबन में, सत्र कृत भोजन खाय।
श्रीगीता के पाठ से, पाप समूल नसाय ॥

छन्द—अन्तःकरण जिसका सुनो गीता में रमता है सदा।
वह अग्निहोत्री सर्व जपतप ध्यान युत ज्ञानी सदा ॥
सोइ क्रिया युत पंडित बड़ा गीता में मन जिनका लगा।
सोइ दर्शनी धनवान सोई सोई योगी रस पगा ॥
यज्ञ करता सोई ध्यानी सोई वेदार्थन भरा—।
गीता के जाननहार जो सोई सकल सिध्दिन से परा ॥
गीता की पुस्तक है जहाँ तहँ जानिये तीरथ सबै।
सर्व तीर्थ प्रयाग युत बसते महा महिमा सबै ॥
पुनि शरीरहु गृह सर्व में देवरिषि का बास है।
योगी सहित पन्नग सकल रमते सो गीता आस है ॥
ध्रुव नारदादि, मुनीश्वरादिक सिद्धि मिलते धाय है।
श्रीकृष्ण आनन्दकन्द गीता भावकृत हरषाय है ॥

कुण्डलियां—सिरी कृष्ण कह सुनहुँ अब, अर्जुन बात हमार।
निशि-दिन गीता का जहाँ, चरचा रहत अपार ॥
चरचा रहत अपार तहाँ निश्चै मोहिं जानी।
अर्जुन गीता ज्ञान हृदय मेरी सति वानी ॥
अम ज्ञान अरु अछय ज्ञान गीता मम प्यारी।
गीता उत्तम सार धार त्रैलोक्य सुधारी ॥

दोहा—है उत्तम अस्थान यह, गीता ज्ञान महानि।
धारण उर पुनि याहि करि, सर्वेश्वर पहिचान ॥

कुण्डलिया—उत्तम विद्या है मेरी, यह गीता सति जान।
ब्रह्म रूप संसय रहित, नास नहीं अनुमान ॥

नास नहीं अनुमान कहाँ लग करूँ बखाना।
अचल सनातन अर्धमात्र नहिं वेदहुँ जाना॥
अनिर्वाच्य पद रूप विभव में सत्य प्रमाना।
है कौन्तेय महावाणी यह गीता ज्ञाना॥

दोहा—गुप्त नाम गीता कृते, सो समझाऊँ तोहिं।
सुनि अर्जुन जो ध्यान से, पातक घातक ओहिं॥

छन्द—ए गीता गंगा गायत्री सरस्वति सीता और सत्या।
ब्रह्म विद्या ब्रह्म वल्ली मुक्ति गेहिनि चिदानन्त्या॥
भवघ्नीं भ्रान्ति नाशक सो आर्धमात्रा है सुखकारी।
त्रिसंध्या और वेदत्रयी परा है नाम भै हारी॥
मंजरी ज्ञान तत्त्वार्थहु अनन्ता नाम गीता के।
नाम शुचि यह अठारह जो महादुर्लभ है गीता के॥
जपै नित मन को थिर करिके ज्ञान ततकाल सोपाई।
अन्त में मोक्षफल करि प्राप्त आनन्दमय सदा गाई॥

दोहा—सकै पूर पढ़ि जो नहीं, तो पुनि नव अध्याय।
पढ़ैं तासु फल एक शुचि, गोदानहिं ठहराय॥
करै तीन अध्याय को, पाठ निरंतर जोय।
लहै गंग अस्नान कृत, पुन्य महानहुँ सोय॥
छः अध्यायन के पढ़े, सोमयज्ञ फल होय।
द्वै अध्यायन पाठ करि, इन्द्र लोक गति सोय॥
जो एकहि अध्याय को, पढ़ै न अन्तर होय।
रुद्र लोक तक प्राप्ति सों, नेम प्रेम कृत जोय॥
आधा अथवा नेक हूँ, पढ़ै रोज अध्याय।
नित्य निवाहै प्रेम से, सूर्य लोक सुख छाय॥
सात पाँच अश्लोक दश, तीन चार दुइ एक।
अथवा आधहि पढ़त जो, चन्द्र लोक गति टेक॥

चौपाई—जो अश्लोक एक यक काला। अथवा गीता अर्थहिं वाला।
अस्मर्तो जो त्यागहिं देही। मोक्ष लहै नहि संशय तेही।
गीता अर्थ पाठ जो करहीं। अन्त महा पापी हूँ तरहीं।
पुस्तक युत जो त्याग शरीरा। विष्णुलोक सो पाव गभीरा।
मरण समय एकहुँ अध्याया। अन्य कहै तबहूँ गति पाया।
मरण समय गीता कर नामा। कहै मुक्ति पावै श्री धामा।
जो जो कर्म करै कहि गीता। सो सो कर्म सुफल फल जीता।
पितर कृत्य जो श्राधहु माहीं। गीता पाठ पितर तरि जाहीं।
पीतर ह्वै सन्तुष्ट महाई। आशिरवाद पुत्र हित लाई।
गीता लिखि जो भुज गल बांधी। मिटै उपाधि उपद्रव आँधी।
गाय पूँछ गीता कर धारी। दीन दान जमु महि दै डारी।
सुवरण युत गीता करि दाना। देहि विप्र विद्वान महाना।

दोहा—सो फिर जन्म न पावहीं, शुद्ध भाव उरधार।
गीता सत पुस्तक करे, दान लहै गति सार।

छन्द विधाता—कहैं श्रीकृष्ण सुन अर्जुन जो गीता अर्थ को सुनिके।
करै सौ दान पुस्तक को देत, इच्छितहु फल गुनि के॥
जो नर मानुष क तन पाकर पढ़ा नहिं रत्न गीता कर।
सो अमृत त्याग कर मूरख गरल पीता है दुख छाकर॥
ये गीतारूप अमृत को पान करि मोक्ष कृत पावै।
छूटि भवरुज से जाता सो खास बैकुण्ठ को जावै॥
ये गीता आस कर करके, जनक आदिक बहुत राजा।
रहित सब पाप से होकर परमपद बैठि सुख छाजा॥

दोहा—अरजुन यह गीता मेरी, परम ज्ञान कर सार।
जो जाना यह सार पुनि, ते न बँधहिं संसार॥
मति मतान्त हूँ में मेरी, गीता सूर्य समान।
अद्भुत है गीता महा, करि देखहु उर ध्यान॥

नीच ऊँच का है नहीं, कारन गीता सार।
ब्रह्म रूप जानहु इसे, सकल धर्म आधार॥
कुण्डलिया—जो निन्दा ईर्षा करै, श्री गीता कर कोय।
अचल नरक ताको मिलै, प्रलय काल तक रोय॥
प्रलय काल तक रोय अहं से अर्थ उलंघी।
कुम्भी नर्क गंभीर रहत तह सरत अपंघी॥
गीता वाचक निकट जाय, नहिं सुनत बनाई।
श्वान सुअर ह्वै लहत, अनेकन दुःख महाई॥
दोहा—जो गीता चोरी करै, पाठ निरत मुद भीन।
वृथा पाठ श्रम तासु को, पुन्य तुच्छ फल हीन॥
जो सुनि गीता अर्थ को, अति आदर नहिं कीन।
सो प्रमाद सो होत है, वृथा सकल श्रम हीन॥
वस्त्र रेशमी कनक युत, श्री गीता कृत दान।
वाचक को दीजै हरषि, प्रभू हेत करि मान॥
छन्द—वस्त्र भूषण द्रव्य पूजन, करन वक्ता कों चही।
अरु अन्न नाना भाँति के, भगवान हित अरपन चही॥
यह है कहा श्री कृष्ण को, गीता सनातन आप को।
पढ़ि पाठ गीता अन्त में, माहात्म फल है तासु को॥
गीता पढ़ै माहात्म छोड़ै, तो वृथा श्रम पाठ को।
माहात्म से संयुक्त गीता, पाठ से फल खास को॥
जो पठन पाठन करि प्रथम, गीता को फिरि माहात्म को।
सो मोच्छ इच्छित पावहों, करि भाव आत्मा आपको॥
इति श्रीमद्वाराह पुराणे सूत शौनक संवादे
श्री कृष्ण प्रोक्तं श्रीमद्भगवत गीता माहात्मं ॥सम्पूर्णम्॥
छन्द बद्ध 'कीरति' करी, छामे हैं सज्जन लोग।
कविताई 'जानूँ नहीं, भक्ति भाव का योग ॥इति॥

श्री दीनानाथ जी सहाय ॥
श्रीमते रामानुजाय नमः ॥
श्रीगुरु चरण कमलेभ्यो नमः ॥
श्रीहरि शरणं श्री हरि शरणं ॥
श्री मद्भगवत गीता छन्द वन्दः ॥

पहिला अध्याय

श्री जयति

प्रणम्य परमात्मानं कृष्णं रामानुजम् गुरुम् ।
गीता व्याख्या महं कुर्वे गीतामृत तरंगिणीम् ॥

दोहा—बन्दों निज गुरु श्री चरण, बार बार सिरनाय ।
छन्द वद्ध गीता करूँ, कीजै आसु सहाय ॥

छन्द—धृतराष्ट्र सुत दुरयोधनादिक कुरु क्षेत्रहिं गाहिं ।
औरहु युधिष्ठिर आदि कुन्ती, तनय जुरि यक ठाहिं ॥
निज सैन लै लै युद्ध हित तैयार हैं सब वीर ।
यह देखि तहं धृतराष्ट्र संजय से कहत अधीर ॥
निज पुत्र अरु सुत पांडुके दोउ मिलि परस्पर माखि ।
सो कीन्ह निश्चय काह करने का विचारहिं राखि ॥
समुझाय सो संजय कहो, मन होत अधिक अधीर ।
संजय कहन लागे तहाँ कर, जोरि सुनिये धीर ॥

❀ संजय उवाच ❀

दोहा—नृप दुर्योधन व्यूह युत, निरखि पाँडवन काँहि ।
औरहु सेना अमित लखि, गयो द्रोण के पाँहि ॥

❀ दुर्योधन का वचन ❀

सोरठा—द्रोण समीपहिं जाय, कह्यो सुयोधन जोरि कर ।
सुनि लीजै चित लाय, द्रुपद शिष्य जो आपको ॥

दोहा—द्रुपद राज का पुत्र जो, जो धृष्टद्युम्न जेहि नाम ।
ताके स्वबल सहाय से, पाँडुसेन अभिराम ॥
यथा योग्य स्थान पर, स्थापित हैं सब वीर ।
सेना कुन्ती सुवन की, देखहु उत्तम धीर ॥

छन्द—भीम अर्जुन सरिस सेना में भारी धनुष धारी हैं ।
नाम तिनके सुनो हमसे कहूँगा सब उचारी है ॥
महारथि द्रुपद युयुधाना विराटौ धृष्टकेतू है ।
काशिराजा चेकिनानो तथा पुरोजित समेतू है ॥
नरों में श्रेष्ठ शैव्यसुहै कुन्ति भोजौ बली सब हैं ।
शक्ति धीरज में बलभारी वीर अभिमन्यु भी सँग है ॥
युधामन्यु बली सारे महारथ वाले सब ही हैं ।
है जिनमें द्रोपदी के पुत्र सेना यो सही सब हैं ॥

दोहा—कटक मोर द्विज राज जी, सुनो वीर जो ऐन ।
जानन हेतु तुम्हार में, नाम कहूँ रण सैन ॥
मुख्य हमारी सेन में, तुम्हैं बताऊँ नाम ।
कर्ण भीष्म अरु आप है, कृपाचार्य अभिराम ॥
अश्वत्थाम विकर्ण हूँ सोमदत्त सुत जान ।
भूरिश्रवा अस नाम है, औरहु सब युधिमान ॥

छन्द—है भीष्म करके रक्षिता सेना हमारी मानिये ।
असमर्थ ताते हैं सकल द्विजराज उर में आनिये ॥
है भीम कृत रक्षित जो सेना पांडु सुत की जानिये ।
पितामह सुत पांडु के दोऊ बली अनुमानिये ॥
इस हेतु दोनों ओर की उचिताउचित करि भाग के ।
खड़ी सेना सकल यहि विधि भीष्म पक्षहि लाग के ॥
यह सुनि प्रतापी भीष्म दुर्योधनहिं हर्ष बढ़ावने ॥
करि सिंह नाद समान गर्जन घोष शंख जेतावने ॥

तब शङ्ख भेरी और तासे एक सँग बजने लगे।
तेहि भयो मिश्रित शव्द भारी दशो दिसि गुजने लगे॥

कुण्डलिया—श्वेत अश्व जोड़े जुते तेहि रथ में भगवान।
दिव्य शङ्ख अर्जुन सहित कीन्हा घोष निदान॥
कीन्हा घोष निदान युधिष्ठिर युत कुन्ती सुत।
पुष्पक शङ्खहिं तुरत बजायो सहदेवहु द्रुत॥
नकुल सुघोष बजाय गयो रव भरि छिन माँहीं।
मणि पुष्पकहिं बजाय दीन सुखदेव तहाहीं॥

दोहा—महारथी काशी नृपति, श्रेष्ठ धनुष धर वीर।
धृष्टाध्युम्न शिखंडि पुनि, अजित शत्रु यदुवीर॥
महा महा नृप वीर हैं, सात्यकि और विराट।
द्रुपद राज है सैन इमि खड़े सँवारे ठाट॥

सोरठा—हे महिपाल सुजान, और द्रौपदी के तनय।
अभिमन्यहु बलमान, निज निज शंखन घोषकरि।
महाशोर चहु ओर, पृथ्वी अरु आकाश में।
धृतराष्टहि सुत ओर, हृदय विदारक शब्द सो॥

दोहा—सुनो महीपति और हूँ, समर होन के काल।
कापिध्वज़ पाँडव अर्जुनौ, जोहि पुत्र तब हाल॥

चौपाई—युध्यार्थहिं तब पुत्र निहारी। धनुष ऊँच कर पार्थ उचारी॥
हे अच्युत दोउ सेन मझारी। रोकहू रथ यह विनै हमारी॥
खड़े भये रण हेत तयारे। प्रथम तिन्हैं अवलोकहुँ सारे।
येहि रण खेतहि में मम साथा। करहिं कौन रण लखिहौं नाथा।
केहि सँग युद्ध योग्य है ताता। योग्यायोग्य लखूंगा ज्ञाता।
सँग धृतराष्ठ सुवन के जङ्गी। दुर्बुद्धी नृप हैं तिन संगी॥
सो सब यहाँ इकट्ठे सारे। सो अवलोकहुँ युद्ध हकारे॥

संजय उवाच

चौपाई—कह संजय सुनिये महिपाला। अर्जुन बचन सुनत ततकाला।
मध्य सेन रथ रोकि बिहारी। दोउ सेना कृत कृष्ण मुरारी।
द्रोणाचार्य भीष्म के पाहीं। औरहुँ सब राजन मधि माहीं॥
बोले कृष्ण पार्थ सुनि लीजै। यक थल कुरुवंशी लखि लीजै॥
कृष्ण वचन सुनि रण मधिमाहीं। अवलोक्यो अर्जुन सबकाहीं॥
पिता सरिस भूरीश्रव आदिक। पितामहा हैं भीष्महु ज्ञानिक॥

दोहा—सोम दत्त आदिक सबै, पूज्य आचार्यहुँ खास।
दोणाचार्य महान सब, मामा शकुनिहु खास।

कुण्डलिया—दुर्योधन युत भ्रात सब द्रुपदी सुत सुन पाँच।
लक्ष्मणादिकन के सबै पुत्र पौत्र हित साँच॥
पुत्र पौत्र हित साँच सखा अश्वत्थामादिक।
कृतवर्मोहूँ सखा सबै सम्बन्ध प्रथमिक॥
ससुर द्रुपद अरु सुहृद सर्व कृतपार्थ निहारी।
कृपा भार युत खेद कृष्ण प्रति बिनै गुजारी॥

दोहा—बिनै हमारी ध्यान से, सुनिये कृष्ण सुजान।
स्वजन समर इच्छा भरे, गात शिथिल मम ज्ञान॥

छन्द बरवै—मुख सूखत तन कंपत अति मन खीन।
सुहृदन समर विलोके दशा सुदीन॥
धनुष छुटन अब चाहत कर भे खीन।
त्वचा जरी सब जाती शक्ती हीन॥
खड़ै नहीं रहि जात भ्रमत मन अति अकुलाय।
हे केशव विपरीत निमित्तहुँ पड़त देखाय॥
स्वजन मारि संग्राम नहीं कल्याण देखाय।
विजै राज्य सुख कृष्ण नहीं अब कछु सोहाय॥

राज्य भोग्य मुँहि काहिं प्रयोजन हे गोविन्द ।
अब तो जीवन मोहि हित लागत फन्द ॥
जिन हित हम सुख राज्य कामना कीन ।
वे प्राणहुँ धन त्यागि समर मन लीन ॥
ये आचार्य महान पिता सम कका हमार ।
पितामहा अरु पुत्र ससुर मामाहुँ हमार ॥
हे मधुसूदन राज्य त्रिलोकी के यदि हेत ।
मारहि यदि वे मोहिं हमै नहिं मारन चेत ॥
तो पृथवी के हेत कौन यह करै अधर्म ।
होत खिन्न मन मोर समर सुहृदन में नर्म ॥
हे मधुसूदन मारि अन्ध नृप पूत ।
पाप लागिहैं मोहिं आततताई समकूत ॥
पापहिं होई मोहिं ताहि कृत हे प्रिय तात ।
गान्धारी के सुवन न मम कर मारे जात ॥
निश्चय पूर्वक कहूँ सुनो मधुसूदन बात ।
स्वजन मारि पुनि सुःख न मोहि दरशात ।
कुण्डलिया—अहो जनार्दन लोभ से भ्रष्ट चित्त जो होय ।
ये दुर्योधन आदि सब क्षय कुल दोष न जोय ।
क्षय कुल दोष न जोय मित्र कृत द्रोह व्याधि में ।
देखत यद्यपि नाहिं तऊ कुल क्षयहु आदि में ॥
क्षय कृत रोषहिं देखि मोर कृत पाप प्रवृत्ती ।
नहिं जानत कस होय दया करि करहु निवृत्ती ॥
दोहा—क्षय कुल जब सब होय तब, धर्म सनातन जाय ।
धर्म नष्ट अधरम बढ़े, जाय प्रतिष्ठा हाय ॥
होय प्रतिष्ठा हीन कुल, अधरम के करि साथ ।
स्त्री दुष्टा होयगी हे मधुसूदन नाथ ॥

२

सोरठा—वर्णशंकरहु होय, कुलटा इस्त्रिन में तवै।
धर्म जाय सब खोय, तब फिर काह बसायगो ।।
चौपाई—वर्णशंकरहि द्वारा पाई। पितर पिन्ड कृत क्रिया महाई ।।
पिन्डोदक बिन क्रिया उपाई। पितर परत संसारहिं आई ।।
ताते कुल घातिन के कुल को। वर्णशंकरहिं हेतु नरक को ।।
जो कुल घाती है पुनि उनको। दोष वर्णशंकर कृत तिनको ।।
जाति धर्म कुल सर्व सनातन। नष्ट होत लहि कोटिन पापन ।।
नष्ट भये जिहिं कुल भगवाना। उन मनुष्य कृत नरक निदाना ।।
बहुत पाप हम कीन मुकुन्दा। स्वजन मारि पुनि चहहिं अनन्दा ।।
सुत धृतराष्ट्र अशस्त्र निहारी। मारहिं जो मोहिं रणहिं मझारी ।।
बदला हेत न करब उपाई। मारहिं मोहिं यहि बिधिहु भलाई ।।
यहि विधि रण में जो मोहि मारैं। सोऊ हम कल्याण निहारैं ।।

संजय उवाच

धृतराष्ट्रहिं से सकल हेवाला। संजय कहत सुनो भूपाला ।।
संग्रामहिं मधि अर्जुन वीरा। यों कहि धनुष डारि दिय धीरा ।।
दोहा—वाण सहित धनु डारि महि, रथ के पीछे जाय।
शोकाकुल व्याकुल अधिक, अर्जुन भान भुलाय ।।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे विषाद योगोनां प्रथमो अध्यायः।

दोहा—कीरति पै करिये दया, नाथ कृष्ण छवि खान।
चरण शरण में राखि के, मेटि देहु अज्ञान ।।

।। इति ।।

श्रीमद्दीनानाथार्पणमस्तु शुभम् भूयात् ।।

दूसरा अध्याय

सोरठा—श्री गुरु चरण अगाध, है अधार निशि दिन मेरे ।
'कीरति' की यह साध, विघ्न रहित यह पूर हो ।।

दोहा—संजय तहँ धृतराष्ट्र से, कहत सकल समुझाय ।
करुण वाक्य दृग सलिलयुत, लखि अर्जुन यदुराय ।।
मधुसूदन भगवान तब, बोले करुणा ऐन ।
अर्जुन प्रति सम्बोधि बहु, हित कर राजिव नैन ।।

श्रीकृष्णजी का वचन

दोहा—जो अनार्यन के सदा, सेवन योग्य हमेश ।
नर्क देवने हार जो, अपकीरतिहुँ विशेश ।।

छन्द भुजंगप्रयात—महामोह ऐसा तुम्हें विषम थल में ।
भयँा हाय कैसे कहो एक पल में ।।
पृथा पुत्र कायर बनब जोग्य तुम में ।
विचारो भला क्या उचित है तुमन में ।।
परंतप सुनो बात मेरी सुदृढ़ में ।
निकालो हृदय की कलुषता तु छिन में ।।
तजो अब हृदय की तु कायरपना को ।
खुशी से विनाशो तु शत्रु जना को ।।

अर्जुन वचन

अहो कृष्ण प्यारे सुनो बात मेरी ।
लड़ूंगा भला कैसे मित्रों को घेरी ।।
है आचार्य द्रोण पितामह को हेरी ।
करूँ कैसे गा युद्ध आफत हैं मेरी ।।

हिम्मत नहीं है सुनो नाथ मेरी।
लड़ूँगा कभी ना मैं दी बात फेरी ॥
ये दूनो हैं पूजा करन योग्य हेरी।
चलाऊँ न सायक विनय हैय मेरी ॥

दोहा—उत्तम गुरु मारूं नहीं, भित्ता अन्य कमाय।
दिव्य कामना के विषै, हतूं न शस्त्र उठाय ॥

छन्द बरवै—जिन मारि हम जीना न चाहैं वे हैं सनमुख आज।
धृतराष्ट्र के सुत मारि फिर होवेगी जग में लाज ॥
हम मारि इनको फिर न चाहैं जियब हे यदुराय।
कुल, नाश का जो दोष लागे सकल काज नसाय ॥
छत्री स्वभाव से ध्वंश मेरा भया याही हेत।
धर्म से चित चकित है कार्पण्य याही हेत ॥
छत्री धरम में युद्ध उत्तम याकि भित्ता योग्य।
जौन कृत कल्याण कारक होय योग्यायोग्य ॥
चकित मनहूँ शिष्य होकर पूँछता हूँ जौन।
कीजिये निश्चय वही कल्याण दायक तौन ॥
करि अनुग्रह देहु शित्ता करन योग्यहिं जोय।
हम तुम्हारे शरण हैं, करुणा हमारी तोय।

दोहा—हा हा बड़ा अनर्थ यह, अर्थ कढ़े भल नांहिं।
त्रिभुवन सम्पति हू मिले, शोक जाय मम नाहिं ॥

कुण्डलिया—संजय कह धृतराष्ट से, शत्रु विनाशक बीर।
गुड़ाकेश निद्राजितक, ऐसा समरथ धीर ॥
ऐसा समरथ धीर वीर अर्जुन धनुधारी।
मालिक इन्द्रिन हृषीकेश श्रीकृष्ण मुरारी ॥
तिन सो अस कहि वीर करूँगा नाहिं लड़ाई।
कहि गोविन्द से बैन मौन गहि लीन डेराई ॥

संजय उवाच

दोहा—सुनहु भूप धृतराष्ट्र पुनि, मध्य सैन के पार्थ।
तजे युद्ध उतसाह लखि, बोले कृष्ण यथार्थ ॥

श्री भगवान उवाच

श्लोक—अशोच्यानन्वशोचत्वं प्रज्ञा वादांश्च भाषसे।
गतासून गता सूंश्च नाऽनु सोचंति पंडिताः ॥

कुँडलिया—प्रभु जाना अर्जुन विषै, धर्माधर्म सुज्ञान।
याके है कुछ भी नहीं, धर्म अधर्महिं भान ॥
धर्म अधर्महिं भान मानि अधरम कहँ धर्मो।
किन्तु जानना चहत मोह गत बिन नहिं धर्मो ॥
बिन आत्मा के दर्श मोह नहिं नष्ट उपाई।
ज्ञान बिना नहिं दर्श आत्मा निश्चय पाई ॥

सोरठा—ज्ञानहु बिन निसकर्म, होने का तो है नहीं।
शास्त्र विहित है धर्म, करि आत्मा नात्मा लखै ॥

चौपाई—अरु विवेक उपदेश लगाई। जीव शरीर विवेक न पाई ॥
याके विन पाये उपदेशू। कर्म होय निश्काम न शेसू ॥
करि अध्यात्म शास्त्र उपदेशा। हरिहैं अर्जुन केर कलेशा ॥
यह बिचारि उपदेशन लागे। अर्जुन सुनहु कहत तुम आगे ॥
सोचहु जो नहि सोचन योगू। भाषहु पंडित सरिस वियोगू ॥
पितर हमार पाय नहिं श्राधा। गिरहिं स्वर्ग से नर्क अगाधा ॥
स्वर्ग लाभ अरु नर्कहु ताता। श्राद्ध अधीन नहीं यह बाता ॥
निज कृत किये पुण्य अरु पापा। स्वाधीनहिं ताके हम थापा ॥

'क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'

इमि प्रकार फल पाय सदेहा। आत्मा के स्वाधीनहु येहा ॥
केवल यहि शरीर अधिकारा। मुख्य आत्मा मूल निहारा ॥

यद्यपि पुत्र पितर हित करमा । श्राद्धादिक लहि पुण्य सुधरमा ॥
पुत्र सदेह आत्म सम्बन्धी । पितर श्राद्ध ताते कृत बन्धी ॥
दोहा—तद्यपि श्राद्धन होन से, स्वर्ग बिगारिहहिं नाहिं ।
यह होना कोई काल में, सत्य नहीं दरशाहिं ॥
चौपाई—ताते नासमान यह देही । नित्य एक रस जीव अमरही ॥
यह प्रमाण गहि पंडित लोगू । करत न सोच आत्म संयोगू ॥
याते है अयोग्य तुम सोचू । करहु सुकर्म युद्ध नहि पोचू ॥
श्लोक—नत्वे वाहं जातु नासं नत्वं नेमे जनाधिपाः ।
नचैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
कहत कृष्ण सुन अर्जुन भावा । जीव आत्मा केर स्वभावा ॥
श्लोक—अहं-सर्वेश्वर इतःपूर्व मनादौ काले जातु नासमपि त्वासमेव।
मैं सरवेस प्रथम अरु अनहीं । आदि काल क्या थानहिं तबही।
निश्चय था तजि दे सन्देहू । क्या तव तू नहिं था सच एहू।
श्लोक—त्वं नासोः अपितु आसीः एव ।
मैं निश्चय था अरु निश्चै तुम । मै जैसा वैसे क्या नहिं तुम ॥
श्लोक—इमे जनाधिपाः किं न आसन् अपित्वा सन्एव ।
ए राजा सब थे क्या नाहीं । ये भी थे सब रख उर माहीं ॥
श्लोक—अतः परं सर्वे वयं किं न भविष्यामः अपितु भविष्याम एव।
इसके आगे हंम तुम ये सब । क्या नहिं होंगे होवेंगे सब ॥
याते नित्य आत्मा जानो । सोचव बृथा बात सति मानो ॥
हम अरु तुम ये सर्व उचारा । आप कहा सो अर्थ निहारा ॥
सिद्ध भया याते यह सारा । जीव ईश्वरहु न्यारा न्यारा ॥
दोहा—यह न्यारापन सत्य है, याही से भगवान ।
मोहित लखि तहँ पार्थ को, उपदेशा सति ज्ञान ॥
यह न्यारे पन के विषै, श्रुति का भी परमान ।
मिथ्या उपदेशै नहीं, मरजादा पति जान ॥

श्लोक—नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको
बहूनां योविदधाति कामानिति ॥
दोहा—जो परमात्मा एक है चेतन नित्य महान ॥
सो बहुचेतन नित्य को, जीव कामना दान ॥
चौपाई—जो अज्ञान होत भ्रम पाई । तौ ताको यह देहु सिखाई ॥
परमारथ द्रिष्टी के अधिपति । आत्म यथात्मनि सदान्याय पति ॥
अरु अज्ञान रहित स्वारूपा । परम पुरुष श्रीकृष्ण अनूपा ।
नित्य स्वरूप कृष्ण का जानी । अज्ञाना कृत भेद न आनी ॥
दर्शन कार्य भेद नहिं होई । तो भी अज्ञ कहै यदि कोई ।
तो उपदिष्ट होय उन करके । गीता अप्रमाण तिन करके ॥
कीन अभेद कृष्ण कहि कोऊ । याते भेद निरा कृत सोऊ ।
निश्चय कीन अभेद याहि से । जले वस्त्र सम बँधत न यहिसे ॥
तब यह कहब उचित दरशाई । मृग तृष्णाहिं निरा कृत पाई ।
फिर उसमें जल लेन न जाई । जाई निरा अज्ञ सो भाई ॥
इमि उपदेश जो मिथ्या करहीं । तो गीता प्रमाण नहिं धरहीं ।
बिना भेद उपदेश नसाई । परमात्मा से यह नहिं पाई ॥
कुण्डलिया—प्रथम अज्ञ थे ये नहीं शास्त्र ध्यायन सो ज्ञान ।
शास्त्रभ्यासी ज्ञान जो होता सो वह आन ॥
होता सो वह आन कबहुँ अज्ञानहु पाई ।
नित्यहि ज्ञान स्वरूप कृष्ण में यह नहिं पाई ॥
श्रुति का है परमान देखि शक लेहु मिटाई ।
तारतम्य नहिं करहुँ श्रुतिहिं परमानहु पाई ॥
श्लोक—यः सर्वज्ञः सर्व वित् ॥ पराऽस्यशक्ति र्विविधैव श्रूयते-
स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रियाच—तथो यहाँ भी कहैंगे ।
वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणिच भूतानि मांतु वेद न कश्चनः ॥

दोहा—है प्रमाण यह अर्थ में, भेद सिद्ध लखिजात।
उपदेशै बिन भेद कहि, हरि अर्जुन यक गात ॥
अपने आपहिं को तहाँ, उपदेशे भगवान।
इमि कहना तहँ बात को, आगे देत प्रमान ॥
दरपण जल प्रतिबिम्ब सो करत बतकही जौन ॥
मूरख अरु उन्मत्त सो, कहत जगत सब तौन ॥
अप्रमाण तिन बात सब, जिन अभेद कृत ज्ञान।
जाहि अभेदो ज्ञान का, तेहिं उपदेश न जान ॥
सोरठा—ना उनके गुरु कोय, नाहिं शिष्य यहि सिद्ध को।
जीव याहि से जोय, परमात्मा से भिन्न है ॥
दोहा—इस देही कृत जीव की, तीन अवस्था जोय।
बाल्य यौवनहिं औ जरा, प्राप्ति देह कृत सोय ॥
छन्दगीतिका—वह लखि दशा देहान्तरों की धीर लखि नहिं है फस
नहिं मोहही ज्ञानी पुरुष लखि अनित देहिन की दशा ॥
अहो कुन्ती तनय मात्रा इन्द्रियन की जो यही।
स्पर्श तिनके मैं कहूँ तुम ध्यान से सुन तो सही ॥
रस रूप शब्द स्पर्श औरहु गंध शीतल उष्णता।
मृदु कठोरहु शब्द अरु शीतोष्ण शस्त्र प्रहर्णता ॥
संयोग और वियोग आदिक दुःख देने हार भर।
आवागमन इनका लगा तुम भरत वंश सम्हार कर ॥
दोहा—सुख दुख दोऊ हैं जिन्हें, सदा बराबर जान।
मोक्ष मार्गदर्शी वही, इन्द्रीजित बलवान ॥
गत आँसुन अरु अगत का, यही अर्थ पहिचान।
आत्म सत्य देही अनित; सोच तजहु मतिवान ॥
नराच छन्द—जो सत्य है वही कभी असत्य होन की नहीं।
असत्य भी कभी न सत्य होन की सुनो सही ॥

लखा है पुरुष तत्व दर्श को भली न भाँति से।
कहूँगा सो सभी प्रसिद्ध और हर प्रकार से।
कीजिये जो आत्म तत्व है अचेतना भरा।
नाश होत है नहीं सो व्याप्त है भुवन्तरा॥
विनाश जिनको है नहीं को नाशने समर्थ है।
नित्य जीव को विनाश जो कहै सो व्यर्थ है॥
ये जीव नित्य एक सार है सही सु जानिये।
नाश वान देह को बिचारि युद्ध ठानिये॥
दोहा—है अजन्म यह आत्मा, जन्मै ना केहु काल।
नित्य पुराना काल सब, नया नहीं भ्रम टाल॥
कुण्डलिया—सुन अरजुन मन लाय अब, समझाऊँ सोइ सार।
विगत कलेवर हूँ भये, मरत न आतम सार॥
मरत न आतम सार अजन्मा याहि बिचारी।
जो जानब यह बात मरत कैसहुँ नहिं मारी॥
नष्ट देह पुनि भये नहीं यह नाश देखाई।
केवल देह वियोग भ्रान्ति से दुखित लखाई॥
सोरठा—वस्त्र नवीनहिं धारि, तजत पुराने वस्त्र ज्यों।
त्यों यह देह निहारि, तजहु भ्रान्ति अरजुन बली॥
दोहा—सके काटि हथियार नहिं, न्यारा आत्मा जान।
अग्नि जले डूबे नहीं, वारि न पवन सुखान॥
अति सूक्ष्मता से प्रगट, आवत नहीं बिचार।
रहित विकारहु मानिये, ताते सोच नकार॥
छन्द—जो याहि जानहु गे मरा ही या अजन्मा नित्य।
तो आतमहिं हे वीर अर्जुन सकहु सोचि न कृत्य॥
जो जन्म पाया मृत्यु निश्चै मृत्यु पाये जन्म।
तिस हेतु यह निरुपाय में अब सोचना क्या तन्म॥

अहो अर्जुन भूत प्राणी औ मनुष्य अनेक।
आदि में कोउ थे नहिं करि देखि लेहु विवेक॥
जन्म के प्रथमै मरण पीछे अवस्था मध्य।
दीखते हैं फिर न दीखै शरण पीछे सध्य॥
सब भाँति निश्चै यही है तब सोचना क्या बात।
परिहार करि देहात्म बादहिं फेरि इमि कहि ख्यात॥
दोहा—आत्मा दिष्टा है वही, न्यारे मान शरीर।
ज्ञाता श्रोता वचन हूँ, दुरलभ आत्मा धीर॥
कुण्डलिया—आत्मा है सब में सही क़िन्तु विलक्षण जोय।
कोऊ तपस्वी पुण्य कृत, कहत आत्महिं सोय॥
कहत आत्महि सोय, कोऊ तिन में मतिमाना।
पुण्य मान बड़ भागि आत्मा कोऊ पिछाना॥
तैसेहीं पुनि अपर पुरुष कोऊ सुनि काना।
महत मानि यहि लीन; कोऊ सुनि कर नहिं माना॥
दोहा—है अवध्य सब देह में, जीव पार्थ सति मान।
सर्व भूत में ताहिते, मोचन शोचन जान॥
धर्महु को भी देखि कै, दया करन नहिं योग्य।
क्षत्रिय धर्महिं योग्य है, धर्म युद्ध ही भोग्य॥
छन्द—अहो अर्जुन जो खुला आपहि से स्वर्ग दुआर है।
युद्ध से वह प्राप्त है पाते सो सूर अगार हैं॥
जो कदाचित धर्म रूपी वीर यह संग्राम को।
करोगे नहिं तो लहो अपकीर्ति और कुनाम को।
होय पाप महान अपकीरति विषै यह जगत में।
उठहु ताते समर को हे वीर अर्जुन यतन में।
जाना प्रभु अर्जुन के मन की पार्थ मन में जानता।
स्नेह करुणा भ्रात हित तजि युद्ध में यह मानता।

नहीं अपकीरति हमारी भ्रात के अस्नेह में।
सोऊ कहत श्रीकृष्ण अर्जुन से सुनो रखि नेह में।
कर्ण दुर्योधनहु तुमको शूर अब लो जान हीं।
युद्ध करने से न तिन से ओछ कायर मान हीं।

दोहा—सुन अरजुन निन्दा तेरी, करि लघु हँसि हैं वीर।
गहत देखाऊँ शस्त्र कर, पार्थ महा आधीर ॥

सोरठा—आभूषण में नारि, सर्प सिंहादिक देखि कै।
हित युत लेवहिं धारि, लखि सनमुख भगबो भलो ॥

चौपाई–तैसहि जब यह निन्दहिं जोई। बड़ा दुःख यहि से नहिं कोई।
अस निन्दा सुनि रण मांधमाहीं। मारन मरन उचित ही ताही ॥
हे कुन्ती सुत यदि रण मरिहो। तबहूँ स्वर्ग प्राप्त मुद करिहो।
जो जीतोगे तो महिं काहीं। भोग्य भोग लहिहो मुद माही ॥
युद्ध अर्थ याते उठि जाहू। तजि यह काल फेरि पछिताहू।
सुख अरु दुःख बराबर जानी। जय अरु अजय समानहिं मानी ॥
युक्त होहु अर्जुन रण हेता। पाप प्राप्ती नहिं सुख चेता।
आत्म स्वरूप अनेक प्रकारा। दीन ज्ञान अर्जुन तोहि सारा ॥
कर्म योग साधनहुँ मोक्ष कृत। फेरि कहत श्री कृष्ण कृपा युत।
यह बुधि सांख्य जो मैं तुम पाहीं। सब बिधि अर्जुन तब हितचाहीं ॥
देह आत्मा केर विवेका। तामे कहि अब योगहि तेका।
कर्म योग में कहिहौं सोई। जाते कर्म बन्ध दुख खोई ॥
ज्ञान युक्त जो कर्म योग यह। कहूँ महात्म सुनाऊँ तब वह ॥

कुण्डलिया—कर्मयोग निष्काम में प्रारंभक नहिं नाश।
जो समाप्त होवै नहीं तऊ नहीं कुछ त्रास ॥
तऊ नहीं कुछ त्रास छूट का दोष नहीं है।
यह निष्कर्म प्रधान एक लव मात्र सही है ॥

जन्म मरन से लेत खैंचि भय बड़े बड़े से।
करता रच्छण सदा भाव निसकाम बने से॥

दोहा—उत्तम बुद्धी पुरुष सोइ, निस्कर्मी दरसाय।
विष्णु श्रीपरमात्मा में, मन करि तरिजाय॥
अस्थिर बुद्धी है सोई दुख सुख सम अपमान।
नहि सनेह प्रिय वस्तु में, काम क्रोध भय हान॥

दोहा—निस्कामहि अरु कर्म में, एक रहै सोइ मोच्छ।
जो परमात्मा के बिना, व्यवसाई वह तोच्छ॥

चौपाई—बिन परमात्मा के व्यवसाई। नाना वस्तुन में फँसि जाई।
पशु सुत आदिक चाहन हारे। उन कृत बहुत बुद्धि है न्यारे।
तामे बहुत कामना लागी। बहु शाखा याही कृत जागी।
एक कर्म कृत कर्म अनेका। ताहू में फल लहै कितेका।
ज्यों पुत्रार्थ हेत यज्ञन में। धन अरु धान्यआयु फलमन में।
जो वेदोक्त कर्म कृत स्वर्गा। ताको फल स्वर्गाहिपवर्गा।
स्वर्ग सुःख तजि अन्य नहीं है। कहत जो बहुतक बात यही है।
कथन हार यह राखि कामना। स्वर्ग श्रेष्ठ गुनि कर्महु करना।
जो कथनी मात्राहि रमनिया। जन्म कर्म फलकृत सुखरनिया।
भोग और ऐश्वर्य निमित बहु। साधन कर्म अनेकनहूँ लेहु॥
ऐसी बानी बोलन हारे। लहि वाणी अपहँरणहु हारे।
जिमि इमि चित्त विषय रस भोगी। सो परमात्मन विषै सँयोगी॥

दोहा—हे अर्जुन त्रय गुण विषय, वेदि जोहि तुम लेहु।
कर्महि तीनों श्रेष्ठ है, तुम निर्द्वन्दहुँ येहु॥

चौपाई—क्रियि सात्विक कर्म अपारा। लाभालाभन हृदै विचारा।
रच्छण करि ईश्वर आधीना। चित्त राखु परमात्महि चीना।
कर्म फलों का त्यागन करहू। इमि है युद्ध हेत मन धरहू।
सात्विक कर्म खुलासा कीना। ज्यों सब ताल वारि भर दीना।

जलयुत लखि तलाव यहि भाँती। होत प्रयोजन नर जेहि भाँती ॥
उतना ही जल मानुष लेहीं। तैसेहि जानहु वेद सनेही ॥
वेद जान कारी प्रति सोई। सात्विक कर्म योग्य यह जोई ॥
तुम कृत कर्महि में अधिकारा। फल कृत नहिं अधिकार तुम्हारा ॥
फल कारणहुँ तुम में भाई। होय नहीं तव तोरि भलाई ॥
सुधरम योग्य युद्ध कृत कर्मा। है तुम्हार यह योग्य सुधर्मा ॥
तामे नाहीं करने हारी। निष्ठा सो नहिं होय तुम्हारी ॥
सिद्धि असिद्ध बुद्धि सम जोही। त्यागि कर्म फल यह मति सोही ॥

दोहा—सिद्धि असिद्धि समत्व में, जो है वह है योग।
सावधान करु चित्त को, याही है तव जोग ॥

छन्द तोमर—जो बुद्धि योगी कर्म, सो नीच है वह धर्म।
इस हेतु बुद्धिहि योग, कीजै न अर्जुन भोग ॥
निसकाम कर्महि माहिं, ईश्वर के प्राप्ती चाहि।
सो करहु पार्थ सुजान, इच्छित तजहु फल हान ॥
वह कृपण है नहि वीर, जो इच्छिता फल धीर।
निशकाम कर्मी जोय, युत बुद्धि मिश्रित होय ॥
तो सुकृत लहि यहि लोक, दोउ कर्म त्यागि अशोक।
यह पुण्य पापहु दोय, है त्यागि लहि मुद सोय ॥
निश्काम कर्महि नेत, हो युक्तताके हेत।
बुधि योग जो कोउ कीन, सो कर्म फल तजि दीन ॥
छुटि जन्म बन्धन जात, पद मोक्ष को वह जात।
जब पार्थ तब यह बुद्धि, तजि मोह बन्धन शुद्धि ॥
फल तब सुनन के योग, अरु सुनहु योग्यायोग्य।
लहिहौं अवशि वैराग, बाढ़ो तबै अनुराग ॥

दोहा—जब तव श्रुति में बुद्धि यह, हीय अशक्ति महान्।
तब निश्चल मन में अचल, ठहरै योग प्रमान ॥

अर्जुन उवाच

कुण्डलिया—हे केशव हृदयेश, जी, कहहु मोहिं समुझाय ।
बुद्धि स्थिर यह कौन सी, वाचक ताहि बुझाय ॥
वाचक ताहि बुझाय कौन बुधि स्थिर कैसे ।
काहि कहत समझाय, बतावहु मोहिं अब वैसे ॥
बैठत कैसे उठत चलत अरु बोलत कैसे ।
अस्थिर बुद्धि बुझाय कहहु हे केशव तैसे ॥

श्री भगवान उवाच

कुण्डलिया-रहनि रीति से भी तहाँ, निश्चै होत सरूप ।
रहनि रीति कहता सोई सुन अर्जुन तदरूप ॥
सुन अर्जुन तदरूप आपही निज मन करिके ।
निज रूपहिं सन्तुष्ट आपही में रहा रमिके ॥
मन में भरे मनोर्थ सर्वथा त्यागन करता ।
सोई स्थिर बुद्धि यही हे अर्जुन सरता ॥
दोहा—इन्द्रिन बस जो है पड़ा, मन इन्द्रिन आधीन ।
स्वबस इन्द्रियन कीन जो, अस्थिर बुद्धि प्रबीन ॥
सोरठा—सर्वत्रहिं अस्नेह, होय शुभै शुभ ताहि कृत ।
नहिं करता वह नेह, स्थिर बुद्धि बाही कहैं ॥
दोहा—ज्यों कछुवा सर्वाङ्ग को, लेत समेटि छिपाय ।
इन्द्रिन को इमि खैंचि जो, स्थिर बुधि सोइ पाय ॥
कुण्डलिया-इन्द्री विषयन जो नहीं, सेवत सो मति मान ।
बिना विषय पाये तहाँ, इन्द्री होति मलान ॥
इन्द्री होति मलान देखि तब आत्महिं पाई ।
बिना आत्मा दर्श विषय अनुराग न जाई ॥
सिथिल, भये बिन विषय ज्ञान थिर बन्धन हेतू ।
यत्न अनेक प्रकार किन्तु जो रावर चेतू ॥

छन्द—जो पुरुष मन बस किये बिनही इन्द्रि जित होना चहै।
सो न होने का कभी मन चिन्तवन विषयन रहै॥
सेवने से विषय संयम होती है आशक्ति ही।
आशक्ति से अभिलाष है अभिलाष से फिर क्रोध ही॥
क्रोध से मति भ्रमहुँ होता याहि कृत अस्मर्णं में।
होत विभ्रम हैं तहां विभ्रमहुँ त्यों अस्मृति हुँ में॥
विभ्रम से होता नाश ज्ञानहुँ नाश ज्ञानहिं के भये।
होय नष्ट स्वरूप से संसार में भ्रमते भये॥

छंद—है बस में जिनके इन्द्रियाँ वह राग द्वेषन मुक्त है।
बस इन्द्रियों के करि तहाँ विषयों से वह निरयुक्त है॥
अन्तःकरन निरमल भये फिर चित्त निरमल ही रहै।
नाश होते दुःख सब परसन्नता चित में रहै॥
परसन्न चित्त भये जबै तब बुद्धिहूँ वैसी भई।
शीघ्र सुस्थिर होय बुद्धि अर्जुन लखो यह कृत मई॥
आयुक्त जो समता रहित तिन बुद्धि सुसथिर है नहीं।
अरु उस अयुत कृत भावना यह आस्तिके शोभी नहीं॥
जाके नहीं है भावना ताके न शान्ती मानिये।
फिर वाहि होगा सुख कहाँ से बात मेरी मानिये॥
जो मन ये विषयाशक्त इन्द्रिन के कहे अनुसार हो।
वह पुरुष की बुधि वायु जल अरु नाव के अनुहार हो॥
इससे महाबाहो सुनो जिसकी सरबथा इन्द्रियाँ।
रुकी विषयों से सदा है वही बुद्धि प्रतिष्ठियाँ॥
सो रहे जिस विषय में सब सों प्रमात्मिक जानिये।
बुद्धि विषयी ताहि में इन्द्रियन संयमि जानिये॥
तात्पर्य यही जो आत्मादि स्वरूप लखता जागता।
शब्दादि विषई रूप निशि में भूत प्राणी जागता॥

ज्ञानी जनों की रात्रि रूपा है समझ लो सर्वरा।
ज्यों आपही परिपूर्ण सब दिन सिन्धु जल भर बाहेरा ॥
इमि तैसहिं जेहि कामना सब प्राप्त होय सो शोतिकी।
जो कामना इच्छित रहै नहिं शांति पावत काहु की ॥
जो पुरुष निज अभिलाष तजि इच्छा रहित पुनि सोचता ॥
अहंकार ममता रहित सोइ शान्ति को है पावता ॥
यह ज्ञान है निष्काम कर्म सरूप ब्रह्म सनात को।
स्थिति हुँ याके मिल गये भ्रम जात मानहु बात को ॥

दोहा—अन्त काल अस्थिति लहै, मुक्ति ब्रह्म सम पाय।
सर्व काल यहि विधि रहै, नहिं सन्देह देखाय ॥

इति श्रीमद्भगवतगीता सूपनिषत्सुब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे सांख्य योगो नाम द्वितीयो अध्यायः...

दोहा—कीरति पर अब हे प्रभू, कृपा दृष्टि करि देहु।
ज्ञानरुचिन्तन है नहीं, चरण शरण में लेहु ॥

——

तीसरा अध्याय

सोरठा—गुरु पद पद्म पराग, हृदय धारि मन मुदित ह्वै ।
प्रभु पद नित अनुराग, चाहति यह कीरति सदा ॥

अर्जुन उवाच

दोहा—निश्चय आतम ज्ञान की, अरजुन मन में कीन ।
विनै कियो भगवान से, आत्म ज्ञान लवलीन ॥
कर्म योग से श्रेष्ठ जो, ज्ञान योग तुम कीन ।
घोर कर्म में फिर हमैं, हे केशव कस कीन ॥
मिश्रित बातें कर प्रभू, मो मन मोहहु नाहिं ।
सविधि वाक्य कल्याणयुत, कहहु मोह भ्रमजाहिं ॥

श्रीभगवान उवाच

दोहा—हे अर्जुन निष्पाप तुम, सुनो हमारी बात ।
पूर्व काल इस लोक में, दो निष्टा कृत ख्यात ॥
चौपाई—दो प्रकार निष्ठा हम कीन्हीं, समुझ तात सो राखहु चीन्हीं ।
सांख्य योग वालों को जानों, ज्ञान योग ही सो कृत मानो ॥
योगिन कर्म योग अधिकारा, जानि लेहु सो सर्व प्रकारा ॥
विन शास्त्रोक्ति कर्म के कीन्हें, निस्कृत कर्म पुरुष नहिं चीन्हें ।
विषय निवृत्ति पूर्वक ज्ञाना, लहत नहीं सो प्राप्त महाना ॥
और न कीन्हें कर्महु भाई, सिद्धि लहब नहिं होव दिखाई ।
बिना कर्म क्षण भर सुन हाला, रहत न जीव कौनहू काला ।
प्रकृती सब सत्यादिक सानी, परवश कर्म करन ही जानी ॥
ज्ञान योग कृत फल नहिं जेहीं, इंद्रिय बस मानहु तिन केही ।
विषय इन्द्रियन कृत मन कीन्हें, सुमिरत रहत मूढ़ मति चीन्हें ॥
इन्द्री बस जो आपुहिं होई, योगी बृथा कहावत सोई ।

जो निज इन्द्री बस में रांखा, विषयाशक्त नहीं रस चाखा ॥
कर्म योग कर्मेन्द्रिय हेतू, करत सोई हे अरजुन चेतू ॥
दोहा—ताते तुम निज जाति गुनि, कर्म करो सति जान।
ज्ञान योग बिन कर्म तब, निर्वाहक तन हान ॥
छन्द—कर्म बन्धन जो कहा यज्ञार्थ कर्महिं जान हूँ।
अन्यत्र जो है कर्म करता कर्म बन्धन मानहूँ ॥
अहो कुन्ती पुत्र तुम उस फला सँग छाड़े भये।
यज्ञ ही कृत कर्म कीजो बात यह माने भये ॥
प्रजा पति परमात्मा जो सृष्टि काल अनादि में।
यज्ञ कृति उतपन्न करि, परजा कहा अहलादि में ॥
इस यज्ञ करके वृद्धि को तुम प्राप्त होओ आसुहीं।
इच्छित तुम्हारे पूर्ति कारक कामना युत जासुहीं ॥
सुर पूजि याही यज्ञ कृत उनको बढ़ाओ हाल ही।
पाय पूजा मुदित मन सुर तब मनोरथ पाल ही ॥
यहि विधि परस्पर यज्ञ कृत बढ़ती बढ़ाते तुम रहो।
श्रेष्ठ तुम अरु देव दूनो ह्वै मुदित फल को लहो ॥
दोहा—यज्ञ करोगे ताहि कृत, बर्धित ह्वै सब देव।
इच्छित फल तब देइगे, सोई फल निर्भेव ॥
सोरठा—उनहिन कर सब भोग, बिन दीन्हें उनके जोई।
करत प्रथम उपभोग, दंड लहत सो मोर कृत ॥
कुण्डलिया—सुर कृत पूजन रूप जो, यज्ञ शेष रह नाज।
भोगन वाले यहि के सत पुरुषहु अघ त्याज ॥
सतपुरुषहु अघ त्याज मुक्त है सोई प्राणी।
निज तन पोखन हेत खात वहि पापिहि जानी ॥
जेहि विधि बाढ़ै पाप खात तैसहिं पुनि सोई।
तेहि कृत बाढ़ै पाप अर्थ नहिं अनरथ होई ॥

छन्द—लोक दृष्टी शास्त्र दृष्टी सर्व का जो मूल है।
सो यज्ञ ही है ठीक जानो पार्थ तुम कृत भूल है॥
अन्न कृत सब भूत प्राणी वृष्टि उतपति अन्न की।
सो लोकहूँ परसिद्ध भाती देखने से यज्ञ की॥
है शास्त्र में परसिद्ध वाणी यज्ञ से वर्षा भई।
है प्रसिद्ध श्लोक योंही यज्ञ वर्षा कृत भई॥
यज्ञ उतपति यज्ञ करता कर्म के कृत जानिये।
कर्म होता ब्रह्म से अरु ब्रह्म प्रकृतिहिं मानिये॥
सोई प्रकृति रूपी शरीरहिं ब्रह्म कृत निरमानिये।
प्रथम श्रुति परमान करि यह अर्थ देखि विचारिये॥

श्लोक—तदेत् ब्रह्म नाम रूप मन्नं च जायते।

तथा—मम योर्निमहत्ब्रह्म तस्मिन् गर्भम् दधाम्यहम्।

दोहा—यह इत्यादि प्रमाण से, अर्थहु मानहु सोय।
ब्रह्म प्रकृति को ही कहैं, तेहिं प्रमाणतन जोय॥

चौपाई—वाही कृत परिणाम शरीरा। तन कृत कर्म होत मति धीरा॥
जीव रहित उतपन्न शरीरा। जीव सँयोग कर्म लखु वीरा॥
सब अधिकार याहि कृत देही। योग यज्ञ सब यहि तन सेही॥
जो प्रवर्त मानक यह चक्रा। ईश्वरकृत नहिं करत उतक्रा॥
कर्मधिकारी ज्ञान धिकारी। अनुवर्तें यह होत सुखारी॥
जो पोषहिं बिन यज्ञ शरीरा। इन्द्रिय राम आयु अध वीरा॥
चक्र खुलासा अर्थ बताऊँ। सब विधि शंका तोर नसाऊँ॥
वर्षें अन्न अन्न से देहीं। वर्षा यज्ञ करम कृत येही॥
कर्म शरीर शरीर अन्न से। यहि वर्तत है गहु प्रसन्न से॥
कर्मन किहे दोष केहु नाहीं। सोऊ कहन सुनो मुद माहीं॥
जो आतमहिं आनँद दरशाहीं। आत्म रूप में तृप्त सदाहीं॥
अन्नादिक हूँ से पुनि ताही। रहत प्रयोजन वहि कृत नाहीं॥

दोहा—सदा आत्म सन्तुष्ट हो, करतव्यता सो नाहिं ॥
ताके कर्म अकर्म से, यहि प्रयोजन नाहिं ॥
भूतहुँ प्राणिन में यहाँ, यहि विधि उत्तम ज्ञान ॥
नाहिं प्रयोजन काहु से, चिन्ता नहिं यह मान ॥

छन्द—यह सत्य बात हमार अरजुन सुनहु अब धरि ध्यान से।
जो स्ववस मन इन्द्री अनिच्छित कर्म करि दृढ़ ज्ञान से ॥
सोइ कर्मकारी श्रेष्ठ है दुनिया में जानहु मान से।
आशक्त करमन में नहीं करि कर्म त्यागन मान से ॥
जो स्ववर्णोचित करो तुम कर्म अरजुन शान से।
फल. रहित जो कर्म करता बुद्धिमानी ज्ञान से ॥
कर्म करता अस तहाँ पुनि ब्रह्म प्राप्ती आप से।
यही है अहलाद उत्तम सार कर्मसु जाप से ॥
परचार करि सत कर्म का जन अपर हेत सुलाभ से।
सत कर्म वानी मानते सत सार तत्वहुँ लाभ से ॥
कहा ज्ञान यथार्थ कुन्ती सुवन प्रेमी दास से।
मोहिं लखि सरवस्व सत्य अनादि कालहुँ खास से ॥

दोहा—सुन अरजुन त्रैलोक्य में, मम करतव्य न मान।
रहूँ प्राप्त औ हूँ नहीं, हूँ मैं ही यह जान ॥
तद्यपि ऐसा अर्थ यह, लेहु विचारि सुजान।
निश्चै करिके कर्म में, वर्तमान मोहिं मान ॥

छन्द—कर्म में रहता हूँ अरजुन लोक शिक्षा हेत।
जो करूँ मैं कर्म नाहीं स्वयम् तो जन चेत ॥
कर्म जो पुनि श्रेष्ठ होता कहेंगे सठ केत।
कृष्ण जी करते इसे नहीं कर्म उत्तम नेत ॥
नहीं दीनी कर्मकारी कृष्ण शिक्षा लेत।
कर्म तुच्छ विचारि तजि सतकर्म नष्ठ कि केत ॥

वर्णशंकर का तहाँ करता कहे मोहि केत।
स्वयम् करता कर्म ज्ञान सुज्ञान कारिन देत॥
दोहा—अविद्वान जगलुब्ध ह्वै कर्म लाग पहिचान।
ज्ञानवान कृत कर्मशुभ पावन पद निरवान॥
जो ज्ञानी सो ज्ञान युत कर्मकार पहिचान।
जो अज्ञानी ताहिं कृत, कर्म प्राप्ति युत जान॥
छन्द—अहो अरजुन कर्म सत्ता सर्व प्रकृती को मादी से।
भये उतपन्न पै जो मूढ़ कहते हैं प्रमादी से॥
मैं ही कर्ता मानता यह भावहू उर धारि के।
किन्तु सात्विक गुणी यह नहि कहत तत्त्व विचार के॥
कर्म तिनके तत्व ज्ञाता जानता सब भांति से।
निज कार्य सात्विक गुण लगेलखि नाहिं भूलत ताहिंसे॥
प्रकृतिहि के सात्विक कर्म को भूले भये जो पुरुष हैं।
सात्वादि गुण अरु कर्म में फल में लपेटे कुरूष हैं॥
अल्पज्ञ मन्दों को तहाँ सरवज्ञ पुरुष विचार से।
कर्म मारग तजन तिन सो करै नाहि उचार से॥
छन्द—अहो अरजुन छत्री का जो शूरतादि स्वभाव है।
ताहि में चित लाय मोहि सब कर्म अपैंचाव हैं॥
फल कि आशा त्यागि कर्तापन कि भी ममता तजै।
भय कर्म वन्धन रूप ज्वर से छूटैतुम युधि कृतसजै॥
जो मनुष्य कोई हमारे मत को नित धारन करै।
छूटते तिन कर्म बन्धन प्रीति युत उर में धरै॥
और जो नहि ग्रहण करहीं मतकोमम निन्दा करै।
ये सर्व विषयन मूढ़ अज्ञानी सदा नरकै सरै॥
जो ज्ञान वाले हैं व अपनी जाति और स्वभाव के।
सदृश चेष्टा करत जो है यज्ञ तेहिं शंकान के॥

सव भूत प्राणी आप अपनी जाति ही को अनुसरै ।
करैगा निग्रह वहाँ क्या अरु सुभावहु युत सरै ॥

कुण्डलिया—जो है कर्म स्वभाव से ताके निग्रह नाहिं ।
तव उपाय सो क्या करै सो यहि विधि दरशाहिं ॥
सो यहि विधि दरशाहि कर्म अरु ज्ञान इन्द्रियाँ ।
राग द्वेष इन हेत युक्त है चपल इन्द्रियाँ ॥
होना इन बस नाहिं कबहुँ ये सब दुखदाई ।
बन्धन जीवन केर राग अरु द्वेष मिलाई ॥

दोहा—राग द्वेष बस ह्वै रहे, धर्म त्यागि दुख लीन ।
निष्ठा परधर्मी गहे, सीख कृष्ण तिन दीन ॥

दोहा—नेत्र इंद्रियन प्रीति से, अर्जुन मूँदे नैन ।
निज धर्महिं त्यागन लगे, दया सुजन कृत दैन ॥

चौपाई—स्वजन देखि तेरे उर माही, आई दया करूँ रण नाहीं ।
युद्ध कृत्त निज मानि अभागी, पालूं पेट भीख ही मांगी ॥
सोई कृष्ण निवारण करहीं, श्रेष्ठ कर्म समुझौता घरहीं ।
श्रेष्ठ कर्म आरंभत जोई, सो नहिं चहौं चहै भल होई ॥
स्वे धर्में मरना सब भाँती, है कल्यालान न की यह पाँती ।
पर धर्मैं में मरतो जोई, अति भय कारक है दुख सोई ॥

अर्जुन उवाच

चौपाई—कृष्ण वंश उतपन्न कन्हाई, आप स्वधर्म ठीक दर्शाई ।
अन्य धर्म भय दायक होई, जो ऐसा जानत है सोई ॥
सुधर्म पूर्वक ज्ञान योग में, होत प्रबर्त विषय तजि छन में ।
जब विषई इच्छा कुछ नाहीं, तब यह पुरुष जबरई माहीं ॥
विषय युक्त सम परै देखाई, केहिं कर प्रेरा पाप कमाई ।
कहहु बुझाय मोहिं गोबिन्दा, जाते मिटै मोर भ्रम फन्दा ॥

श्रीभगवान उवाच

दोहा—अरजुन का सुनि प्रश्न यह, कहत कृष्ण भगवान।
रजोगुणी जेंहि कामना, सो है पापी मान॥
विषय अधिक सेवन करै, बड़े अहारहु खाय।
क्रोध याहि कृत जानहूँ ज्ञान विषै रिपु पाय॥
ढकै अग्नि ज्यों धुवाँ से, दरपन मल करि जान।
गर्भ बूड़ आवृतिहिं त्यों, ढकन कामना मान॥

छन्द—अहो कुन्ती तनय इस ज्ञानी क बैरी नित्य जो।
दुःख से नहिं भरि सकै यह अपरिपूर्ण भिक्तिजो॥
इच्छाचारी भी है ऐसी कामना से ज्ञान जो।
ढकि रहा विषयों में ऐसा कामना दित मान जो॥
शत्रु को जीतन जो चाहो तो प्रथम उस धाम को।
स्वाधीन करना जानलो अरु ध्यान रख उन नामको।
कामना अस्थान मन अरु बुद्धि दोऊ जानिये।
यान अच्छादित इन्हीं करके है अरजुन मानिये॥
जीव मोहित करत बहुविधि कामना यह मानि के।
ताते संयम इन्द्रियन को प्रथम करहु पिछानि के॥
पुनि सरूपी ज्ञान युत विज्ञान भक्ती के विषै।
जीतता जो काम क्रोधहिं पावता सो अनमिषै॥

दोहा—प्रवल इन्द्रियन मान ते, ज्ञान विरोधी जौन।
इन्द्रिन से मन प्रवल है, बुद्धि विषैली औन॥

इति श्रीमद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे
श्री कृष्णार्जुन संवादे कर्म योगोनाम तृतीयो अध्यायः॥

दोहा—चरण कमल दै कीर्ति को करिये नाथ सनाथ।
दीन देखि करिये दया, गहिये प्रभु मम हाथ॥

॥ इति ॥

चौथा अध्याय

श्रीजयति

सोरठा—सिरि गुरु चरण भरोस, तोस सदा उर में धरूँ ।
दीन जानि मोहि पोस, गुरु दयालु समरथ सदा ।।
अहो महा भुज पार्थ, देखि प्रवल मन बुद्धि से ।
दुसह कामना आर्थ, जानि शत्रु को मारिये ।।
बुद्धिहि को करि साथ, मन रोको अरजुन सुनो ।
नियम शस्त्र गहिं हाथ, मारहु पापी शत्रु को ।।

छन्द—वह मुमुक्षु प्रकृति साथी होत नहिं सहसा कोई ।
ज्ञान योगाधिकारवाला प्रकृति साथिन में सोई ।।
याते तृतीअध्याय में यहि कर्म करना ही कहा ।
ज्ञान योगी के लिए कर्तव्य त्यागहिं को कहा ।।
और जन संग्रह निमित्तहु कर्म ही को श्रेष्ठ कहि ।
अब जो जगत उद्धार हित में आदि मन्वन्तरहि कहि ।।
किया था उपदेश या ही कर्म योग प्रधान को ।
वाही चौथे अध्याय में दृढ़ करन अरजुन ज्ञान को ।।
है याहि अंतर्गत विज्ञानहु योग सब बिधि दीखता ।
याते इसी की ज्ञान योगाकारता भर दीखता ।।
ज्ञान योग दिखाय कर्महु योग के त्यों रूप को ।
ज्ञान अंश प्रधानता युत भेद भिन्नहिं रूप को ।।
करत अरजुन बोध इमि सब भाँति भेद बतावहीं ।
अवतार भगवत को यहाँ कहि ठीक निश्चै धारहीं ।।

॥ श्रीभगवान उवाच ॥

दोहा—तुम हित जो हमने कहा, हे अरजुन यह योग।
सो केवल युधि हेत ही, तुम कृत भरत्न प्रयोग ॥

चौ०—याको कल्प आदि के माहीं। जिन प्रति कहा सोउ के ताहीं ॥
प्रथमहिं अव्यव कर्म योग को। कहा भानु कृत यह प्रयोग को ॥
रवि वैवस्वतमनहु उचारा। मनु इच्छ्वाकुहिं से कहि डारा ॥
ऐसहि परंपरा से या को। प्राप्त राजरिषि जानत ताको ॥
सो यह योग काल बहु पाई। नष्ट होत भो गयो बिलाई ॥
है यह योग पुरातन जोई। मैं तुम प्रति समझायो सोई ॥
तुमको भक्त दास निज जानी। कहि उत्तम रहस्य कृत बानी।

अर्जुन उवाच

नाथ जन्म मैं अबै निहारा। विवस्वान कर प्रथम उचारा ॥
तुम यह योग आदि हूँ उनका। दान बुझाय कहहु तुम तबका ॥
सुनि अरजुन कृत प्रश्न महाना। मधुर बचन बोले भगवाना ॥

भगवान उवाच

अहो शत्रु संतापन बांरे, सुनो परंतप वचन हमारे।
भये व्यतीत जन्म बहु तेरे, मेरे औरहु अरजुन तेरे ॥
मैं उनको सब जानहु भाई, किन्तु नहीं तुम जानन पाई।

दोहा—यह अर्जुन कारण यही, मोहिं अविनाशी मान।
अन्तरयामी सर्व में, ईश्वर भूत न मान ॥

चौपाई—पार्थ अजन्मा मैं यह जोई। वात्सल्य अरु शोभा सोई ॥
शरणागत रक्षक गुन आनी। सोइ सुभाव ही से यह बानी ॥
ज्ञान सहित अवतार हमारा। ज्ञान रहित यह जीव निहारा।
ज्ञान अखंड हमारा सोई। भक्त हेत अवतारहु होई ॥

श्लोक—यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

निश्चै जब जब हानि धर्म की। अधिकाधिक वृद्धी अधर्म की ॥
तब तब रूप धारि मैं आऊँ। निज भक्तन कृत महि प्रगटाऊँ ॥

श्लोक—परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुस्टताम।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

ब्रह्मसूत्र प्रमाण—इदम् ज्ञानमुपाश्रित्य ममसाधर्म्य मागताः ॥

श्रुति प्रमाण—भोगमात्र साम्यलिंगाच्च ॥

तथा—विद्वानपुण्य पापे विधूय निरंजना परमां शान्ति मुपैति ॥

चौपाई—अधरम वृद्धि धर्म की हानी। देखि साधु रक्षण की बानी ॥
संरक्षण भक्तन कृत करहूँ। दुष्ट विनाश हेत तन धरहूँ ॥
अरजुन प्राकृति कर्म न मेरा। जो जानत निश्चै मोहि हेरा ॥
देह त्यागि फिर जन्मै नाहीं। होय प्राप्त मेरे में जाहीं।
संसारी जे कर्म नसाई। भय अरु क्रोध मोह सब जाई ॥
सब थल मोकँह जानन हारा। अरु जे आश्रित अहै हमारा ॥
ऐसे बहु तप रूप ज्ञान से। जानि मोहिं मे प्राप्त आसु से ॥

दोहा—हे अर्जुन जो जो कछू। अहै वेद की राह ॥
ये निष्काम सकाम सब। कहै मार्ग मम याह ॥

छन्द किरवान—मार्ग वेदन के जान, कहे मेरे सो मानें—
सुनो—अरजुन सयान सोई मारग महान ॥
आश्रित मार्गों के हेत, कर्म करते त्यों चेत—
राखि भावों से हेत, भजै जो जन हमार—॥
भजै जोई जेहि भाँति, मिलूँ तासो तेहि भाँति—
बात मान साँच ख्याति, येही मम स्वभाव सार ॥
भजै जोजन सकाम, देत पुत्र धनौ धाम।
भजै जोजन निष्काम, ताहि मुक्ति देत तार ॥

जो कर्म सिद्धि हेत, कर्म करते अर्थ नेत—
यजन देवन कृत देत, जन्म मृत्यु लोक धार ॥
सत्व गुण के प्रधान, ज्योंहि ब्राह्मण देखान—
कर्म सत्व रज प्रधान, यही क्षत्री कृत चार ॥
कर्म सम दमादिमान, शूर त्यादि कर्म जान —
कर्म रज तमः प्रधान, वैश्य कृषिक कृति निहार ॥
कर्म तमः प्रधान शूद्र हेत यहि जान ॥
परिचर्या यह मान शूद्र कृत्ति यह विचार ॥

सोरठा—करि गुण कर्म विभाग, चारि वर्ण सृष्टी रची।
तेहिं करता कृत लाग, अविनाशी जानो हमैं ॥

छन्द—जो कहा करता प्रथम अपने को वह कारण सुनो।
सो यह कि इच्छा है नहीं हमको करम फल की सुनो ॥
याते नहोते लिप्त कबहूँ कर्म हममें मानिये......।
जो जानता हमको न बँधता कर्म से वह जानिये ॥
पूर्बहुके मनु इत्यादि यह विधिजानि कर्मैं सिख दिया।
सो कहत अर्जुन तोर प्रति सुन धारि दृढ़ मति कर धिया ॥
कर्म कौन अकर्म हूँ पुनि कौन कवि हूँ मोह में।
कर्म सो तुम प्रति कहूँगा जानि मुक्ति सु सोहमें ॥
कर्म करने योग्य सो वह रूपहूँ जाना चही।
कर्म वह यक कर्म में है विविधिकर्म लगे सही ॥
रूप सो जानत उचित है कहब सोई सर्वथा।
कर्म जो है निश्चयात्मक बुद्धि करि ईश्वर प्रथा ॥
निष्काम ईश्वरराधनार्थहिं कर्म जानहु सो यथा।
इस हेत सो गति कर्म की दुर्गम निहारो सर्वथा।

दोहा—कर्म अकर्मन का कहूँ, अबै स्वरूप दरशाय।
जो प्रारंभक कर्म से, आतम ज्ञान देखाय ॥

चौपाई—यह निष्कर्म कामना ही से, ज्ञानहोय लखि ले याही से।
याते ज्ञान यहौ कहवाई, और अकर्महुँ कृत यह पाई॥
अकरम जो यह आतम ज्ञाना, भया कर्म ते कर्महिं माना॥
इमि मनुष्य देखन हारेन में, बुद्धिमान सोइ नर वालेन में॥
सोइ योगी सोइ सब कृत जोई, करनहार सब कर्महु सोई।
जो प्रत्यक्ष कर्म दर्शाई, ज्ञान कारता कैसे पाई॥
सो इमि ज्यों सब लौकिक कर्मा, औरहु जो ये वैदिक धर्मा।
आरंभक कामना लगाई, संकल्पहु से रहित महाई॥
ज्ञान रूप नल दग्ध भये सब, बंधक कर्म कहत पंडित तब।
जो सम्बन्ध छाड़ि फल कर्मा, आत्म रूप में तृप्त सुधर्मा॥
नश्वर लखि संसार आस तजि, कर्महु में प्रवृत यदि हरि भज।
तबहुँ न सकत कर्म तेहि बाधी, करै न कुछ तबहूँ गति साधी॥

दोहा—जो फल कर्मन को तजै, आशा चित्त लगाय।
परमात्मा तजि अन्य कृत, करै न हृदय बसाय॥
सो शरीर सम्बन्ध से, करै कर्म यहि लाय।
बन्धन कर्म करै नहीं, पीड़ा सकल नसाय॥

छन्द—जो मिलै कुछ आपही से तुष्ट होवै ताहि में॥
सुःख दुख अरु जय पराजय लाभ और अलाभ में।
शोक हर्षहु आदि द्वन्दों से रहित सब भाँति से।
सो कर्म करके नाहिं बन्धन पावता केहुँ भाँति से॥
सिद्ध और असिद्ध मत्सर बुद्धि शुद्धि सब भाँति से।
मुक्ति पाता अन्त में विधिजीति जब सब भाँति से॥
संग निवृत भया जिसका आत्मानद के बिना॥
अरु वासना संसार से है मुक्त दुरविषयन बिना।
है अवस्थित चित्त जिसका आत्मज्ञान प्रधान में।
सो जो करै यज्ञार्थ कर्महु बन्ध कर्म नशान में॥

निष्काम करम से ज्ञान होता ताहि कृत यहि विधि कही।
कहीं ज्ञानाकारता सब कर्म की जानो सही॥
संधान अरु परमात्मा निष्काम कर्मों की प्रथा।
वह कहत ज्ञानाकार सो ऐसे सुनो अरजुन तथा॥
जेहि करके अर्पण हव्य करते सो श्रुवादिक ब्रह्म है।
है ब्रह्म ही का कार्य घृत कृत हव्य सोऊ ब्रह्म है॥
ब्रह्म रूपी अग्नि में यह ब्रह्म रूपी हव्य त्यों।
ब्रह्म सदृशहि जानि होता ताते सब कृत ब्रह्म ज्यों॥
यह ब्रह्म रूपी यज्ञ करि कृत प्राप्त होता ब्रह्म को।
यह ब्रह्म नियमित कर्म करि यह योग्य प्राप्ती ब्रह्म को॥

दोहा—ज्ञान कारता सब कही, कर्म योग की जान।
कर्म योग के भेद अब, कहूँ सकल निरमान॥
अपरे अकारो वै विष्णुः.........
यह श्रुति के परमान से, विष्णु परायण जोय।
प्रतिमा पूजन रूप से, यज्ञ कृत्तिहूँ सोय॥
ब्रह्मात्मक योगीहुँ सों, अग्नि यज्ञ बहु भाँति।
साधन सामग्री सहित, हवनत सोउ विख्याति॥

कुण्डलिया—औरहु कितने एक हैं योगी अति मति मान।
श्रोत्रादिक इन्द्रियन को संयम रूप समान॥
संयम रूप समान अग्नि में होमत कोई।
यह तात्पर्य बिलोकु श्रवण हरि कीर्तन गोई॥
सो शब्दादिक विषय इन्द्रियाँ रूप अग्नि में।
हरि कीर्तन के बिना श्रवण नहिं अन्य लग्न में॥
दोहा—जीति इन्द्रियन हाथ ले, मन स्वधीन कोउ कीन।
लगा आत्मा ज्ञान में, इन्द्रीजित यह लीन॥

कितने योगी द्रव्य से, करत यज्ञ सोइ दान।
कितने तप उपवास कृत, यज्ञ करत कल्यान॥
पुण्य क्षेत्र कोउ जाय पुनि; बास रूप व्रत कीन।
कितने वेदध्ययन कृत यज्ञ करन मन दीन॥

छन्द—न्यून जो आहार करते बहुत इमि ज्ञानी महा।
बहुत प्राणायाम चित धरते बहुत करते तहाँ॥
एक करि प्राणहु अपानहुँ होमि मन आनँद महा।
प्राण वायु अपान मिश्रित करत योगी सुख लहा॥
तैसे ही पुनि कोऊ योगी प्राण और अपान को॥
प्राण रोके प्राण ही में हवन ते सुख आत्म को॥
जानकारी ज्ञान यज्ञन के है इतने जानिये।
पाप हति करि ज्ञान विधि से पृथासुत अनुमानिये॥
करि निवृत्ती पापहारी यज्ञ अन्न उदर भरे।
प्राप्त होत सनातनहिं सो कृत्त सत्विक विधि धरे॥
जो यज्ञ करते हैं नहीं वह नष्ट होवन हार हैं।
नष्ट दोऊ लोक ताके जिन न योग सम्हार है॥

दोहा—यज्ञ यही विधि भाँति बहु, ब्रह्महिं मुख दर्शान।
करमज ही मानो इन्हें, करमहिं मुक्ति प्रधान॥
द्रव्य यज्ञ से श्रेष्ठ हैं, ज्ञान यज्ञ यह ज्ञान।
द्रव्य यज्ञ फल ज्ञान ही, ताते ज्ञान महान॥
सर्व कर्म फल सहित यह, होत समाप्तिहिं ज्ञान।
इस ज्ञानहिं के हेत हीं, यज्ञ कृति यह मान॥

छन्द—जो तत्व दर्शी ज्ञान के उपदेश उनसे लीजिये।
करिके तिन सत्कार सेवा ज्ञान अमृत पीजिये॥
यहाँ श्रीभगवान करुणा कार ज्ञानी जनों की।
करि प्रशंसा ज्ञानि जन मरजाद हित तह तिनोंकी॥

अहो कुन्ती तनय सुन जिस ज्ञान के जाने भये।
भूत प्राणी सर्व को सदृशहि लखोगे सुख छ्ये ।।
प्रकृति से है भिन्न यह पर ज्ञान करता सर्व में।
है समान सरीख अपने देखि फिर हूँ सर्व में ।।
प्राप्त जीवहिं ज्ञान जब तब सर्वथा मम सदृसहीं।
कहूँगा आगे सोऊ जस ज्ञान कृत वह दरसहीं ।।
श्रुति आदि प्रमाण से भी नाम रूप रहित भया।
सूक्ष्मवस्था आत्मा परमात्मा समता भया ।।

इदं ज्ञान मुपाश्रित्य ममसाधर्म्य मागताः।

(ब्रह्मसूत्र पुराण)

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च।

ऐसे ही श्रुति में भी प्रमाण है ।।

तथा

विद्वान्पुण्येपापे विधूय निरंजनाः परमां शान्ति मुपैति ।।...

दोहा—अग्नि दारु को भस्म करि, तीखी अनल बनाय।
हे अरजुन ज्ञानाग्नि त्यों, बंधन कर्म जलाय ।।

कुण्डलिया—सत्य सत्य यह लोक में ज्ञान समान न आन।
है पवित्र एको नहीं भरत वंस यह जान ।।
भरत वंस यह जान ज्ञान कुछ काल कर्म को।
कर्म योग कृत सिद्ध होत यह आप आप को ।।
करि संयम इन्द्रियन ज्ञान में लगा भया सो।
अरु श्रद्धायुत पुरुष ज्ञान को प्राप्त भया सो ।।

दोहा—फिर वह प्राणी ज्ञान करि, लहत शांती खास।
अज्ञानी श्रद्धा सहित, ज्ञानी करत न आस ।।

कुण्डलिया—नष्ट भ्रष्ट सो भ्रमत है यह संसारहि माहि।
परलोकौ लोकौ नहीं संशय है मन जाहिं ।।

संशय है मन जाहि याहि से अरजुन वीरा।
कर्म योग निष्काम अराधन ईश्वर धीरा॥
परमात्मा के हेत अर्पि जिन कर्महिं दीना।
करि कृति ज्ञानहि संग छिन्न सब संशय कीना॥
दोहा—अस्थिर चित ज्ञानी वही, कर्म न बाँधन हार।
करि अस्थित यह हृदय में, अरजुन होहु तयार॥
संशय अपने को तुरत, ज्ञान खड्ग से काटि।
तत्पर होवहु कर्म में, क्षात्र धर्म युधि डाटि॥
श्लोक—तस्मादज्ञान संभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥
॥ इति ॥
श्रीमद्भगवत गीता सुपनिषत्सुब्रह्म विद्यायांयोग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे कर्म सन्यास योगो नामं चतुर्थोऽध्याय॥
दोहा—कीरति को करि किंकरी, चरण शरण में लेहु।
भव भय मेन्हु दीन लखि, सेव प्रेम पद देहु॥
इति
श्रीमन्दीनानाथार्पणमस्तु

पाँचवाँ अध्याय

श्रीमते रामानुजायनमः

दोहा—गुरू परम करुणा सदन तिन पद कीर्ति प्रणाम ।
गीता गान महान को पूर्ण करहु सुख धाम ॥

श्रीजयति

अर्जुन उवाच

कुण्डलिया—ज्ञान कर्म सन्यास जो योग कहा भगवान ।
कर्म योग फिर ताहि को, कहत कृष्ण मतिमान ॥
कहत कृष्ण मतिमान, श्रेष्ठ जो इनमें होई ।
निश्चै जो प्रभु कीन होय समझावहु सोई ॥
कहा दुतीय अध्याय मुमुक्षुन प्रथम कर्म को ।
ज्ञान योग पर आत्म दर्शना के धर्मन को ॥
तिसरे चौथे में प्रभू, कर्म ज्ञान ठहराय ।
दूनो में उत्तम जोई, देहु मोहिं समझाय ॥
अरजुनके सुनि बैन इमि, कहत कृष्ण भगवान ।
कर्म त्याग सन्यास जो, कर्म दोउ कल्यान ॥

चौपाई—तिनमें कर्म त्याग से भाई । कर्महिं भोग विशेष दिखाई ।
सुनो महाबाहो मन लाई । जो न द्वेष कछु वस्तु न पाई ॥
करै चाहना हूँ नहि जोई । अलग द्वन्द सुख दुखसे सोई ।
तिन्हैं नित्य सन्यासी जानो । सुख दुख मुक्त बन्ध नहि मानो ॥
जो हैं मूर्ख सांख्य योगनका । भिन्न कहत ज्ञानहु कर्मन का ।
पंडित कहहि नहीं यह बानी । दूनो उत्तम सोइ फल मानी ॥
प्राप्त ज्ञान अस्थान हेत जो । सोई प्राप्त कर्म, कृतहित जो ।
ज्ञान कर्म को सम करि जोई । जानत सो विद्वानहु सोई ॥

यह सन्यास कर्म बिन भाई । प्राप्त होन दुर्गम ही पाई।
कर्म योग आतम ज्ञाना में। जो मन रहत लगा ध्याना में।
सो पुनि थोड़े कालहिं माहीं। होय लीन पुनि ब्रह्महिं पाहीं॥
जो निष्काम करत मन लाई। बानी से हरि कीर्तन गाई॥
दोहा—मन से हरि सुमिरन किया, इन्द्रिन विषय हटाय।
भूत जीव कृत आत्मा, अन्तर्यामिहिं पाये॥
आत्मा मन निश्चै धरै, सोई पुरुष महान।
करत कर्म कृति जोहि सर्व, लिप्त न होत सुजान॥
सोरठा—विषय इन्द्रियन माहिं; वर्त्तमान इन्द्री रहै।
धारणा कीन्हेउ माहिं, तत्वज्ञानी देखता॥
छन्द—कर्म योगी देखता स्पर्श करता सूंघता।
स्वांस लेता खाता सोता चलता त्यों ही बोलता॥
पकड़ता अरु छोड़ता त्यों नैन खोलत मीचता।
करता भया करता नहीं अपने क सो वह जानता॥
जो शरीरिक इन्द्रियों में कर्म कृत धारण करै।
कर्म कारक इन्द्रियाँ लखि कर्म फल त्यागन करै॥
कर्म फल की शक्ति छोड़े कर्म जो करता रहै।
पाप कर नहिं लिप्त होता कलश जल समता रहै॥
जो योगि है फल संग तजि के आत्म शुद्धी के विषै।
आत्मा गत पूर्व बन्धन कर्म छूटन के विषै॥
देह मन से बुद्धि करके इन्द्रियन के साथ में।
कर्म करते होय मिश्रित कर्म बन्धन काट में॥
दोहा—योग युक्त जोई पुरुष, त्यागि कर्म फल आस।
आतम ज्ञान समेत सोई, ईश्वर निष्ठा खास॥
चौपाई—प्राप्त होत ईश्वर में आई। आतम ज्ञान योग जो पाई॥
याके रहित जाय सब नाशी। जीव बद्ध ह्वै लहै उदासी॥

जाके चित्त रहै वस माहीं । सो यह देही कतहूँ आहीं ॥
नौ द्वारे का पुर यह देही । मन युत कर्म थापि करि येही ॥
करता और कराता नाहीं । जिमि सुख लहै रहत वैसा ही ॥
अविनाशी आत्मा कृत लोका । जो देवादि शरीरी तेका ॥
कर्ता पन अरु कर्महुँ नाहीं । फल कर मन संयोग त्रिजाहीं ॥
काल अनादि सुभावहिं पाई । संसर्गी प्रकृतिहिं लगि ताई ॥
जिमि कर्तृत्व अपर करमन को । नहि उतपन्न करत तहँ तिनको ॥
याही कृत यह जीव आत्मा । नहिं शरीर कृत अघ दरसात्मा ॥
सुकृतिहुँ ग्रहण करत सो नाहीं । जीव आत्मा भिन्न सदाहीं ॥
जिन कृत ज्ञान अज्ञान ढकाई । तिन हित जीव मोह कृत पाई ॥

दोहा—ज्ञान ढका अज्ञान में, नित कृत है यह नेत ।
देहादिक आशक्त ते, रहै दुःख सुख चेत ॥

छन्द—किन्तु जिनका आत्म सम्बन्धी न कृत यह भान है ।
सोई तिनका सूर्य सदृशहिं तेज ज्ञान महान है ॥
जिसकी आत्मा ज्ञान ही में बुद्धि निश्चल श्रेष्ठ सो ।
नष्ट से जिन ज्ञान करके सब विकारहुँ मुक्त सो ॥
विद्या विनय युत विप्र में करिवर गऊ अरु स्वान में ।
चन्डाल में समदर्शी ही लखि पड़ै पंडित ज्ञान में ॥
समता में अस्थित मन है जिनका वे यही संसार में ।
सर्वजित पहिचान ये सर्वत्र ब्रह्महिं सार में ॥
नहिं हर्षता प्रिय वस्तु पाकर अप्रिये व्याकुल नहीं ।
अविचल सुबुद्धि विचारशाली मिलहिं परमात्मा सही ॥
सो शब्द विषयन में नहीं आशक्त होता है कभी ।
जो आत्मा में पावता सुख ईश मिलने योग्य भी ॥
अहो कुन्ती पुत्र शब्द स्पर्श आदिक गुण जो ये ।
दुःख कारण गुण सकल आतेहि जाते हैं सो ये ॥

मानि लीजै अल्प सुख निश्चै यही उरधारि के।
होते नहीं आसक्त पंडित सर्वथा यहि ज्ञान के ॥
काम क्रोध आवेश तन में होने ही देते नहीं।
सोई योगी जानि लीजै और मानुष जन वही ॥
सुःख जिनको आतमा में औरहूँ विश्राम है।
ज्ञान आत्मा सो प्रकाशित सोई योगी आम है ॥
दोहा—ब्रह्म मिलन की यतन में, तत्पर रहै हमेश।
ब्रह्म सदृश मुक्ती लहै, औरहुँ तजै कलेश ॥
छन्द—जिनके भये हैं नष्ट दो दो यह उपद्रव मानिये।
लाभ और अलाभ सुख दुख भाग्य तिनकी जानिये ॥
लगिरहा ईश्वर में मन अरु तन परार्थहिं मानते।
चराचर में एक सा व्यवहार निशि दिन राखते ॥
याते उनके पाप सब है क्षीण निश्चै मानिये।
रिषि सदृश अरु ब्रह्म सम मुक्तीलहत उरधारिये।
औरहूँ अति सुगम मुक्ती का उपाय जता रहा।
सुनो अरजुन ध्यान से मैं मुक्ति मार्ग बता रहा ॥
सब यज्ञ तप बल भोक्ता अरु लोक ईश्वर मानिके।
जगत के जीवों को भजता मो समानहिं जानिके।
मुक्ति पाता सर्व बिधि संसय कभी इसमें नहीं ॥
दास आपन जानि अरजुन तुमको सिख देता सही ॥
इति श्रीमद्भगवतगीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे कर्म संन्यास योगो नाम पंचमोऽध्यायः ॥
दोहा—कीरति यह दासी चरण, बिनवति बारम्बार।
मुक्ती देने में प्रभू, अब नहिं करहुँ अवार ॥
॥ इति ॥

छठवां अध्याय

दोहा—गुरु पद कंज नवाय शिर, करूँ विनय कर जोर।
पूर करहु गीता चरित, कीरति नाथ निहोर ॥
श्लोक—अनाश्रितः कर्म फलं कार्यं कर्म करोति यः।
ससंन्यासी च योगी च ननिरग्निर्न चाक्रियः ॥
दोहा—कर्म योग कहि अब प्रभू, ज्ञान कर्म जो साध्य।
दर्श आत्मा रूप सब, योगाभ्यास अवाद्य ॥
छन्द—तह कर्म योगहुँ की अपेक्षा रहित साधन सर्व।
दृढ़ करन के हित कहत सोई ज्ञान कर्म अखर्व ॥
कहि शिरोमणि कर्म योगहि कहत श्री गोविन्द।
जो कर्म फल नहिं चाहता करि कर्म विमल आच्छन्द ॥
सोई सन्यासी है सोई योगी है मति मान।
जो अग्नि कर्म त्यजा नहीं सन्यासि योगिहिं जान ॥
जो क्रिया कर्महि त्यागि दीना वे न योगी मान।
अभिप्राय मुरारि का यह और एक देखान ॥
छन्द—कलियुग में ये सन्यास का निर्वाह होगा हीं नहीं।
होगी मनुष्य न बुद्धि चंचल कलि समै है तैसहीं ॥
छोड़ि कर सन्यास लै मठ बाँधि कर व्यापार सो ॥
स्त्री विवाहित नाहिं तौ करते गमन पर नारि सो ॥
सुत नहीं तो शिष्य करते अरु समान गृहस्थ सो।
अधिक लहि केवल प्रपंचहिं समुझि यह श्रीकृष्ण सो ॥
निष्काम कर्ता कर्म को सन्यास योगहिं श्रेष्ठ करि।
अग्नि कर्म तथा क्रिया के त्याज हेत निषेध करि ॥

दोहा—कर्म योग में ज्ञान हूँ, दर्शावत भगवान।
कहत जिन्हैं सन्यास सो, योग अभेदहिं जान ॥
छन्द वरवै—त्यागे बिन संकल्प कर्म फल वीर।
ईश्वर अर्पण बिना न योगी धीर।
अर्पण ईश्वर करै कर्म तब मान
योगी अरु सन्यासी ताही जान ॥
आत्म ज्ञान की प्राप्ति चाहने हार।
मननशील को ज्ञान प्राप्ति कृत कर्म उदार ॥
प्राप्ति ज्ञान के भये मुक्ति का कारण जान।
अरु संकल्प विकल्प तजहु कृत कर्म अधान ॥
जब न इन्द्रियन विषयन कर्महुँ माहिं।
त्यागी सब संकल्प तो योगारूढ़ कहाहिं ॥
करना कर्म अवश्य आप वस में मन धारि।
निज कृत निज उद्धार अधोगति हारि ॥
मन ही है निज शत्रु मनै फिर मित्र उदार।
बुद्धि साथ करि जीति लिया मन सो हुशियार ॥
दोहा—शीत उष्ण सुख दुःख में, मान और अपमान।
जीता मन इमि शान्त करि, पूर्ण बुद्धि तिन जान ॥
चौ०—ज्ञान वही जो आतम जाना। विज्ञानहु विशेष सोइ ज्ञाना ॥
आत्म अनात्म विवेक लगाई। तृप्त होय मन जेहिं कर भाई ॥
सोई आत्म समान निहारी। निर्विकार यहिं भाँति सुखारी ॥
ठिकरी पत्थर सोन समाना। मानत सोइ योगी मति माना ॥
सुहृद कहावत प्रत्युपकारी। हित कारक सो लेहु निहारी ॥
मित्र परस्पर है उपकारी। शत्रु उदासीनता बिचारी ॥
वैर रहित जो प्रीति कहाई। सो मध्यस्थ जानिये भाई ॥
प्रीति वैर अरु द्वेष समाना। ईर्षा सर्व काल रिपु जाना ॥

सदा हितैच्छु भाव उर माहीं। सोई बन्धु जानु तिन काहीं ॥
धर्म शील सो साधु लखाई। पाप शील सो पापी पाई ॥
इन सब में समबुद्धी वाला। श्रेष्ठ होत है, ज्ञानहु वाला ॥
स्वबस चित्त मन वाला जोई। संसारी आशा सब खोई ॥

दोहा—आत्मा विघ्न परिग्रह रहित, ऐसा जोगो जौन।
परमात्मा में मग्न निरत, बैठ इकान्तहिं तौन ॥

छन्द—आसन नियम इस भाँति योगाभ्यास से करना चही।
मृग चर्म कुश आसन पै तिस्में वस्त्र द्रासन फिर चही ॥
बैठि कुश आसन में अस्थिर मन को निज बस में कियो।
चित्त इन्द्रिय कर्म को करि स्वबस बंधन कटि गये ॥
काया शिर ग्रीवा अचल थिर चित्त समता राखिये।
नासिकाग्रहि देखाता नहिं अन्य कृत चित भाखिये ॥
धारे भये व्रत ब्रह्मचर्यहिं से है अस्थिर चित लगो।
लीन है मेरे में आत्मा निष्ट नियमन में पगा ॥
यों ही नियम में मगे जिन्हों का कालजित योगी वही।
मन लगा मेरे में मेरे सदृश शान्ती सो लही ॥
अहो अरजुन नियम आहरादि योगी के कहूँ।
करैजी आहारअति नहिं सिद्ध नियम न एकहू ॥
करै जो आहार कुछ नहिं तबहुँ योग असिद्ध है।
अति सोवना अति जागने कृत योग लहन असिद्ध है ॥

दोहा—जो अहार अरु नारि सँग, करै प्रमाण लगाय।
सो अहार कृत यह लखे, चार भाग सम लाय ॥

चौ०—आधा उदर अन्न से भरहीं, चौथाई पुनि जल से भरहीं।
पवन हेत चौथाई खाली, राखै तहाँ पवन संचाली ॥
जब इच्छा अतिकाम प्रबलकी, तबै रतिनारि संग तिहिपलकी ॥
जो कोई यह शंका लाई, ब्रह्मचर्य योगी हित गाई ॥

चौदहवें अश्लोक यही में, कहि पहिले अध्याय सही में।
सोहै सत्य यहाँ दरशाई, श्रुति प्रमाण नहिं झूंठ लखाई ॥

रितौभार्यामुपेयात्

रितुके समै नारि करसंगा। ब्रह्मचर्य है सुखद अभंगा ॥

श्लोक—इंद्रियाणीं इद्रियार्थेषु वर्तन्ते इति धारयन्।
कर्मेंद्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ॥

अथवा

योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥

चौ०—जो स्त्री प्रसंग नहिं करहीं। ते योगी कुल जनम न धरहीं ॥
यह प्रमाण से योगी होई। नारि प्रसङ्ग करै सो जोई ॥
यह विहार शब्दार्थ बखानी। कर्म चेष्टा यहि विधिमानी।

दोहा—यह तृतीय असकन्ध के, दूसर ही अध्याय।
कहा तृतीय अश्लोक में, सोइ परमान मिलाय ॥

श्लोक—सिध्देऽन्य थार्थे नयतेत तत्र परिश्रमं समीक्षमाणः।

सोरठा—सोउब जागब जौन, होय प्रमाण मिलाय सब।
दुख नाशक वह तौन, होत योग सिधि जानिये ॥

छन्द किरवान

जब ह्वै थिर यहि भांति, चित्त आतमा में जात।
सर्बकामना नसात सत्य जानो यह बात ॥
मन दीपसो थिराय, नहीं चपलता लखाय—
चित्त भाँति इमि थिराय, योगी उपमा यह पाय ॥
योग सेवन सनेहि, रोकि विषयन को देहिं।
सुख आत्मा के लेहि—बुद्धि उत्तम है येहि ॥
जौन जानन में नाहिं, इन्द्रियन के जानमाहिं।
गहे बुद्धि से न जाहिं महा सुःख जान ताहि ॥
जो जानत यह सार, मुक्त होत ना अबार।

भीति भव की सर्ब टार, फेर जन्म नहीं धार ॥
नहीं और अधिक मान, याहि पाये निर्वान ।
महा लाभ सुख महान । क्लेश नाशन कृपान ॥
ताहि सुखद योग जान । औ वियोग कार मान ।
नाम ताके यह मान । दृष्टि निर्विकल्प ठान ॥

कुण्डलिया—संकल्पज अस्पर्श ये भेद कामना दोय ॥
शीत उष्ण अस्पर्श गुण संकल्पज युत जोय ॥
संकल्पज युत जोय द्रव्य युत याहि निहारी ॥
स्पर्शजक्रत योग न त्याग स्वरूप मझारी ॥
संकल्पज तह सर्व समग्री युत मन हीं से ।
त्यागि इन्द्रियन स्वबस करै मन सत्य नियम से ॥

दोहा - बुद्धी रहित विबेक से । शुद्धि सुनेतन कीन ।
आतम क्रम क्रम प्राप्ती । मन आतम रस मीन ॥

छन्द—चपल मन थिर नहीं जोई आत्महिं सरूप से ।
याते जहाँ यह लगै तहँ से खींच लीजै जतन से ॥
घेरि राखै आत्मा के रूप ही में बस इसे ।
आत्मा में जो लगा नहिं है रजो गुण फिर तिसे ॥
ताते वह निष्काम ह्वै के स्थिर सरूपहिं आप में ।
सुःख आत्मानुभव रूपी प्राप्त योगा हाल में ॥
योंहि योगी रहित अघ है ब्रह्म अनुभव रूप को ।
लहत हालहिं सुक्ख सोई ब्रह्म अनहद जू सको ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायां—श्रुति प्रमाणः—
सखा रूप संयोग उसमें मन लगाया है जोई ।
सो भूत प्राणी सर्व निज में देखता है पुनि सोई ॥
माला मणिक में सूतसम जो सर्व में मोहिं जानहीं ।
मणि सूत में त्यों मानि मुझमें भिन्न नहीं विचारहीं ॥

मैं न उसके अदृश हूँ अरु वह मेरे अदृशहुँ नहीं ।
ज्ञान है इमि भाँति जाके आत्म ज्ञानी है वही ॥

दोहा—जो सरूपयकता करै, तो सुमिरै केहिं काहिं ।
तातें अर्थ यही भलो, मित्र भाव निर्वाहि ॥

चौपाई—बालमीकि रामायण जोई । सुन्दर काण्ड निरखिये सोई ॥
राम सुग्रीव यो रैक्यं देव्येवंसमजायत ॥
हनूमान की वाक्य मिलाई । अर्थ मित्रता सिद्ध लखाई ॥
याते सर्व मित्र कृत जोई । सर्व भूत व्यापक मोहिं जोई ॥
यह निश्चै करि भजता मोहीं । अस योगी सो मोर सनेही ॥
जो दुख सुख सम करि सब देखा । तेहिं उत्तम योगी हम लेखा ॥
यह श्लोक उनतिसवाँ जोई । अर्थ श्लोक खुलासा सोई ॥

अर्जुन उवाच

सुनत बचन श्रीकृष्ण चन्द्र ते । बोले तह अर्जुन अनन्द ते ॥
हे मधुमूदन सुनहु बहोरी । यह समता कृत योग निहोरी ॥
मन चंचल समता किमि पावै । थिर करिबे की मति नहिं आवै ॥
इंद्रिय क्षोभक मन चंचल यह । पवन वेग सम रुकै न मन तहँ ॥

श्रीभगवान उवाच

अहो महाबाहो सुनि लेहू । कहत कृष्ण लखि परम सनेहू ॥
मन चंचल याही से भाई । रोकब ताको कठिन देखाई ॥
संशय कुछ नहिं यहाँ देखाहीं । धरि विराग अभ्यास कराहीं ॥

दोहा—जो नहिं मन बस में किया, योगलाभ तेहिं नाहिं ।
स्वबस राखि मन जो लिया, क्रमशः प्राप्ती ताहिं ॥

अर्जुन उवाच

॥ नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ॥

दोहा—यह बातन इत्यादि कृत, योग महातम नाथ ।
सुना बहुत पै ज्ञान हित, पूँछत फिर यदुनाथ ॥

छन्द जो युक्त श्रद्धा में सदा अरु यत्न कछु नहिं कर सका।
याते गया मन योग से चलि योग सिद्ध न लहि सका॥
योग सिद्ध न पाये से यदुराय सो गति कौन है।
देहु मोहि बताय सो भ्रम त्यागि दे हम तौन हैं॥
हे महावाहो वेद के मार्ग में भूला भया।
स्वर्गादि व्याज निमित्तके सब कर्म को त्यागा भया॥
निस्काम कर्मी रूप योगहिं में नहीं प्राप्ती लही।
वह अप्रतिष्टी उभै भ्रष्टी कौन सी गति को लहीं॥
कर्म भी छोड़ा सभी अरु योग भी पाया नहीं।
छिनाभ्र की सम सों कदाचित नष्ट होता है सहीं॥
मेघ में से निकल कर जिमि मेघ टुकड़ा फिर वहीं।
मेघ दूजे को न होता प्राप्त होत विलीन हीं।
संशय हमारे को प्रभू तुम छेदने के योग्य हो।
छेदने वाला न दूजा ताते नाथ कृतज्ञ हो॥

श्री भगवान उवाच

दोहा—सुनि अरजुन के बचन यों, बोले तब भगवान।
होता है निश्चै नहीं, वह जोगी कृत हान॥
लोक और परलोक में, नेक हानि नहिं मान।
दुर्गति पाता है नहीं, शुभ करता यह जान॥

चौपाई—जो बिन पूर योग मरि जाई। तऊ न भ्रष्ट पुण्य कृत पाई॥
लोक उपार्जित में सो जाई। प्राप्त अनेक वर्ष रहि भाई॥
फेरि धनी के गृह में जाई। जन्म लेत तह सुकृति बनाई॥
अथवा योगिन के कुल माहीं। जन्मत यह दुर्लभ जग माहीं॥
हे अरजुन यह जन्महु पाई। पूर्व जन्म सम्बन्ध लगाई॥
बुद्धि योग सोई मिलि जाहीं। करत यत्न सोई योगहु काही॥
जो न होय इन्द्रीजित सोई। अरु करना चाहै नहि जोई॥

सोऊ पूरब कर्म मिलाई। प्राप्त उसी को होवत जाई॥
योग ज्ञान हित इच्छा लाई। तबहूँ प्रकृति नाघि तरि जाई॥
इमि प्रयत्न से करते करते। योगी बहुत न धरते धरते॥
सिद्ध होत तब मुक्ती पाई। और सुनो अरजुन मन लाई॥
योगी जो निस्कर्म कमाई। सो तपसिन से उत्तम भाई॥
दोहा—और सकामिन से अधिक, ज्ञानिन हूँ से जान।
तुम अरजुन योगी सोई, क्षत्रि कर्म युधि ठान॥
सोरठा—जो मोमे मन लाय, श्रद्धावान हो पुरुष कोई।
चित्त सरिस चित्तलाय, जानत मोहिं योगी सोई॥
इति श्रीमद्भगवद् गीता सुपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे अभ्यास योगोनाम षष्ठो अध्यायः॥
दोहा—कीरति की बिनती प्रभू करुणा सिन्धु दयाल।
चरण भक्ति दै मेटिये, अब यह जग जंजाल॥
॥ इति ॥

सातवां अध्याय

सोरठा—बुद्धि हीन मोहि जान, श्री गुरुवर करिये दया।
श्री गीता निरमान, छन्द बद्ध कृत शुफल करि ॥

श्रीभगवान उवाच

श्लोक—मय्या सक्त मनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथाज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

कुण्डलिया—लगे भये चित मोहिमे मनहूँ मोमह लाय।
योग युक्त आश्रित भये, बल विभूति दरसाय ॥
बल विभूति दरसाय जौन बिधि सो मोहिं पाई।
सुनो तौन हे पार्थ पृथा सुत अरजुन भाई ॥
सो तुमको विज्ञान सहित वह ज्ञान बताई।
जाके जानन से यह सत्य न दूसर लोक उपाई ॥

दोहा—सहस मनुष्यन में कोऊ, आत्मा ज्ञान विचार।
होत सिद्ध कोउ सहस में, लहत कोऊ यक सार ॥

छन्द—जल वायु अग्नि अकाश पृथवी बुद्धि मन हंकार हूँ।
भिन्न अपरा प्रकृति होती भई आठ प्रकार हूँ ॥
और याते जीव प्रकृती को लखो हमरी तरा।
प्रकृति चेतन जान वह जेहि करके यग धारन परा ॥
सब भूत प्राणी मात्र प्रगटत इन्हीं दूनों से भरा।
उतपत्ति सब थल जगत का मैं अरू प्रलै का हूँ घरा ॥
सूत्र में माला के मणियों सदृश सब गूथा भया।
हे धनंजय याहि से न्यारा न कुछ हम से भया ॥
रसचन्द्र रवि जल कान्ति मैं हूँ अरू अकाशहुँ शब्द जो।
सार सब काहूँ मही सुन ध्यान दे करतव्य जो ॥
सार जल आदिक मही हूँ रसादिक इत्यादि मैं।
हूँ शरीरन का शरीरी पार्थ सुन सरवस्व मैं ॥

अहं शब्द जो अर्थ सो सब यही विधि से जानना ।
संबंध हूँ तह यह शरीरी अरु शरीरहिं मानना ॥

दोहा—पृथ्वी उत्तम गंध जो । अग्निहुँ कृत सोई तेज ॥
प्राणिनमें आयूं मही । तपसिन हुन मय तेज ॥

छन्दलावनी—सकल जनोंके पैदाइस का कारण अरजुन मही तो हूँ ।
बुद्धि मान मे बुद्धि मही हूँ तेजस्विन में तेज तो हूँ ॥
नहीं प्राप्त जो वस्तू होती उसकी कामना महीं तो हूँ ।
प्राप्त वस्तुं अनुराग महीं हूँ बल धारिन बल महीं तो हूँ ॥
अधरम रहित धर्म जो जग में सोऊ वासना महीं तो हूँ ।
शम दम द्वेष मोह आदिक में पैदाइस का मुख्य तो हूँ ॥
सतरज तामस हूँ सब कुछ का स्वावसकारी महीं तो हूँ ।
सदा स्वतन्त्र नहीं वस इनके सर्वधिकारी महीं तो हूँ ॥
त्रिगुन फाँस जग जीव जानतू अरु निर बन्धन महीं तो हूँ ।
इन तीनो गुन भये भाव कर मोहित करता महीं तो हूँ ॥
हे अरजुन अविनाशी पर जगनहिं जानै सो मही तो हूँ ।
सर्व भाँति जग उतपति कारण का आधीश्वर महीं तोहूँ ॥

श्लोक—दैवी ह्येषा गुण मयी मम माया दुरत्या ।
मामे वये (प्रपद्यन्ते) माया मेतां तरंतिते ॥

दोहा—यह मेरी सम्बन्धिनी । दैवी माया जान ॥
अति दुरत्य है याहिते । मम शरणन कल्यान ॥

छन्द—हरि गया है ज्ञान जिनका माया के संयोग से ।
धर्म आसुरि पाय कर लहते अमंगल सोग से ॥
कर्म करने हार निंदित नरन में मूरुख वही ।
अधम मेरे को न भजते जान सो अरजुन सही ॥
अहो अरर्जुन दुखी जो संसार में सो यक वही ।
जान ने हित इच्छु की यक दूसरे जग दुख लही ॥

तीसरे धन चाहने वाले चतुर्थ ज्ञानी महा—।
जन सुकृति चारि प्रकारके ईमि भजन करते हैं तहाँ ॥
जानि लीजे सत्य अर्जुन भक्ति कृत प्रिया अति हमें।
योग युत कृत नित्य सेवी श्रेष्ट सो सबविधि हमें ॥
कारण की ज्ञानी को प्रिया अत्यन्त हमको जानहूँ।
मम प्रिया सोऊ सदा हे पार्थ निश्चे मान हूँ ॥
उदार तो है सर्व पै ज्ञानी अपूर्वहि है मेरा।
पुत्रवत सो है प्रिया यह अभिप्राय सही मेरा ॥
अन्य बहु जनमन के सब जग वासुदेव स्वरूप हैं।
वासु देवात्मक निरखि सब रहित इर्षा रूप है ॥
ज्ञान धारी अस महात्मा कोटि कोटिन एक है।
ज्ञान युत मोहिं भजत इर्षा रहित अद्भुत तोष है ॥
दोहा—अपर जीव आपहिं भरे, राजस तामस मान।
उन-उन कर्मन से तिन्हें, नष्ट भये ही जान ॥

❀ चौपाई ❀

ते पुनि अस निय मन को धारी। अन्य देव को भजत सुखारी ॥

तदेवाग्नि स्तत्सुर्यस्तदुचंद्रमाः

श्रुति इत्यादि अर्थ कहलाई। सर्व खुलासा करि तह गाई ॥

यस्यादित्यः शरीरं

यह प्रमाण सब तहा मिलाई। अन्य देव प्रभु निजहिं बताई ॥
इन्द्रादिक रूपन में मोहीं। भजत जौन युत श्रद्धा जोहीं ॥
तैसहिं मैं उस जन को देहूँ। जस इच्छा धारण करि नेहूँ ॥
सोअस भक्त राखि इच्छाकी। आराधत वह मूर्ति इन्द्र की ॥
ताते मम कर नियम क्रिये जो। लहत कामना अस मनुष्य जो ॥
पै फल नास मान वह सारा। अल्प बुद्धि कृत नाहिं विचारा ॥
इन्द्रदेव पूजन जो कर हीं। प्राप्ति इन्द्रहीं कृत सो घर ही ॥

मोर भक्त पुनि निश्चै मोहीं। प्राप्त होत है निश्चै सोहीं॥
पर स्वरूप सर्वोत्तम सोई। मोहि अविनाशी जानत जोई॥
जो मैं सर्व हृदै दरसाई। मूर्तिमान सबके उर आई॥
मोंहि अमूर्तिमान तह सोऊ। अन्य देव अराधक जोऊ॥
दोहा—अच्छादित माया विषै, मैं केहु दीखत नाहि।
मोंहि अजन्मा नाश विन. मूरुख जानत नाहिं॥
कुण्डलिया—हे अरजुन मैं जानता प्रथम भये अब होय।
अरु हैं तिनको जानहूँ मोंहि न जानत कोय॥
मोहि न जानत कोय परंतप सुनो बनाई।
सुख दुख लाभ अलाभ द्वैष इच्छा जन पाई॥
द्वंदक रूप महान मोह करके फँसि जाई।
प्राणी सब संसार मोह को प्राप्त लखाई॥
दोहा—पुन्य विसाली जौन पुनि, नास पाप कर दीन।
द्वंदक कृत छूटे सबै, ते प्रेमी मोहिं लीन॥
सोरठा—है जो आश्रित मोहिं, जरा मरण छूटन हितै।
करत यत्न मोहिं जोहि, कहूँ आठ अध्याय में॥
श्लोक—साधि भूताधिदैवं मां साधि यज्ञंच ये विदुः।
प्रयाण कालेपि च मां ते विदुर्युक्त चेतसः॥
दोहा—अधि भूतहु अधि देव हूँ, और यज्ञ अधि काहि।
जो मनुष्य जानत मोंही, अन्त चित्तगति ताहि॥
इति श्रीमद्भगवद्गीता सुपनिषस्तु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे विज्ञान योगोनाम सप्तमोऽध्यायः॥
दोहा—'कीरति' आश्रित की सुनो, विनती हे भगवान।
चर्ण कमल दै दीजियो मिटै मोह अज्ञान॥
॥ इति ॥

आठवाँ अध्याय

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

दोहा—सिरी गुरु पद धरि ध्यान। सिद्ध होय गीता कथा ॥
दीन बन्धु भगवान। मिलै कीर्ति गुनगान मुद ॥

अर्जुन उवाच

छन्द—कहत अरजुन सुनहु प्रभु जो सातवें अध्याय में।
मुक्त होन जरामरण के हेतहीं मम आस में ॥
यज्ञ करके जो निरंतर ब्रह्म सम अध्यात्म को।
कर्म करते जो सदा निश्चै सो जानत आत्म को ॥
हे दयामय कृष्ण पुरुषोत्तम कहहु समझाय के।
पूछता सो नाथ करुणा करहु सर्व बुझाय के ॥
कौन है वह ब्रह्म अध्यात्मक कौन पुनि कर्म है।
कौन है अधिभूत औअधि कौन भासहु सर्व है ॥
यह देह में अधियज्ञ कैसे भया अरु वह कौन है।
मन मरण समये जीति लेता जानता किमि तौन है ॥

॥ श्रीभगवान उवाच ॥

दोहा—पर प्रकृती है जानहूँ। प्रकृति मुक्त हूँ जोय ॥
मुक्त जीव सो ब्रह्म है। सुन अरजुन मुद मोय ॥

छन्द—स्वाभाव अध्यात्मक वही जो जीव उत्पति कार है।
त्यों विसर्गहुँ सृष्टि के कृत कर्म संज्ञक सार है ॥
क्षर नास वान शरीर सो अधिभूत है. अरजुन सुजन।
अधिदैवहू यक रूप मेरा पुरुष मंडल, सूर्य सन ॥

हे देह धारिन श्रेष्ठ तुम, अरजुन सुनो सो ध्यान से।
अधियज्ञ मैं ही देह कृत हूँ जीव पूज्य अनादि से।।
अन्त सुमिरत जौन नर मोहि तजत तन धरि उर हमे।
भाव दृढ़ मम पद सनेही प्राप्त आसुहिं सो हमें।।
सोतो लहत निरवान पद सुन और कृत असनेह को।
करत पुनि पुनि जोइ मनोरथ लहत सोइ सोइ देह को।
वस्तु अथवा और प्राणिन को सुमिर ता तन तजै।
सो वह वही को प्राप्त होता त्यागि देह जेहीं भजै।।
मन बुद्धि हममे राखि अरजुन प्राप्त तुम हमको धरो।
जानि निश्चै को हमारी भाव दृढ़ हम में करो।।
हे पृथा पुत्र सुयोग युत अभ्यास आत्म स्वरूप विन।
चित्त हममे सुदृध धरि फिर चिन्तवन करु दुःखविन।।
करते नितै सुचि चिन्तवन देदीप्यमान महान जो।
परम पुरुष जो हूँ यही करि लेत प्राप्त सुजान सो।।

दोहा—जो भक्ती के युक्त नर। मरण समय अस कीन।।
हे पारथ अस जानहूँ। जीति प्राप्ति सब लीन।।

चौपाई—करि मन अचल योग बलपाई। भृकुटी मधितह निश्चल जाई।।
प्राण प्रवेश कुम्भ कृत करहीं। शूक्ष्म से शूक्ष्म पुरातनधरहीं।।
जो पुनि सर्व पालने हारा। नहि चिन्तन में रूप निहारा।।
सूर्य समान विकास महाई। जोपर प्रकृति पुरुष से भाई।।
पर दे दिव्य मान कह जोई। सुमिरत प्राप्त आसु ही होई।।
अक्षर वेदके जानन हारा। बीत राग ईश्वर कृति धारा।।
ईश्वर हित जो यत्नहिं करई। बीत राग तेहि कृत कहसरई।।
ब्रह्मचर्य जिन चाहन धारी। पद संक्षेप कहब धनु धारी।।
जो योगी तन त्यागति ऐसे। इंद्रिय संयम केकरि तैसे।।
फेरि हृदय में मन को लाई। प्राणमाथ निज लेत चढ़ाई।।

अस्थिर योग धारणा पाई । ॐ ब्रह्म यह अक्षर लाई ॥
उच्चारण करि तजै शरीरा । सो उत्तम गति पावत वीरा ॥
जो अनन्य गति सुमिरै मोहीं । नित्य निरन्तर भजन सनेही ॥
नित्य मोर संयोगी काहीं । सुलभ रहूँ मैं संशय नाहीं ॥
यह से अरु अध्याय अन्त तक । ज्ञानी अरु कैवल्यार्थी तक ॥
मुक्ति कहब सब विधि समझाई । ऐश्वर्यक पुनरावृत्ति गाई ॥
जो उपासना रूप हमारी । परम सिद्धि की प्राप्ती धारी ॥
अस महातमा हमको ध्याई । नाश मान फिर जन्म न पाई ॥
ब्रह्मलोक अरु स्वर्ग लोक में । पुनरा वृत्ति लखो सब ही में ॥
मोंहि पाय फिर हे कुन्ती सुत । जन्म लहत नहि नहि कबहुँ चुत ॥

दोहा—ब्रह्म लोक परियन्त से, पुनरा वृत्ति लखाय ।
ब्रह्मा के दिन रात को, कहत प्रमाण देखाय ॥
जो ब्रह्मा का सहस दिन, चतुर्युगी परियन्त ।
रात्रिहुँ है पुनि तैसहीं, जानहु अरजुन संत ॥

छन्द—जो जानता अरजुन यही वह दीर्घ दर्शी खूब की ।
प्रथम मेधा के शरीरहि से शरीर हु जीव की ॥
दिन बनत मेधा के तनसे रात्रि में लहि नास है ।
होत लीन शरीर फिर ब्रह्महि में जाकर खास है ॥
हे पृथा सुत सोई सुन यह भूत प्राणी मात्र सब ।
कर्म पर वस जन्म लेते रात्रि आगम नास सब ॥
ब्रह्म के जड़ माय या यह श्रेष्ठ देह निहारिये ।
अव्यक्त भाव सनातनहुसो सुद्ध तन फिर मानिये ॥
आकाश और शरीर हू यह नष्ट होवन के समय ।
नष्ट सो होता नहीं अरजुन सुनो यह वह समय ॥
अव्यक्त अक्षर कहांसो कूटस्थ अक्षर उच्यते ।
कहते परम गति वाहिको जेहि जन्म छूटते सुद्धते ॥

वह तो हमारा धाम सर्वोत्तम सुनो कृत सार है।
प्रकृति जान शरीर मम और जीवहूँ य हमार है॥
जिमि सर्व घर है आपना पर मन्दिरै निज श्रेष्ठ है।
त्यों जीव कृति अरु जीवमें रहताहूँ मैं यह ठीक है॥
याते हैं मुख्य शरीर मम वह सही यह जो बात है।
कैवल्य मुक्ती सो यही ऐश्वर्य की अत्र बात है॥

दोहा—जाके यह अंतस्थ है, सबही प्राणी भूत।
जेहि कृतजग विस्तार है, ताकृत प्राप्ती कूत॥

चौपाई—हे पुरुषनमें श्रेष्ठ महाई, अरजुन वीर सुनो मन लाई।
योगी देह त्यागि जेहि काला, अनावृत्ति अनवृत्तिक पाला॥
कहिहो सर्व तोहि समझाई, सकलभाँति संशय सुरझाई।
काल जौन में अग्नि प्रकाशा, दिन है सुक्ल पक्ष षट माशा॥
गये उत्तरायण तामे लखि, ब्रह्म लाभ ज्ञानी पावत चखि॥
काल जौन पुनि धूम्र राति को, कृष्ण पक्ष सो षटमासन को॥
दक्षिणायन याकर नामा, जो शरीर त्यागत यहि यामा॥
स्वर्ग पाय यज्ञादिक फल को भोगि लेत फिर जन्म यही को॥
शुक्ल कृष्ण ये मार्ग जगत् के नियमित सकल सनातन हूँ के।
एक संग करि मुक्तिपाई, दुतिय संग जग जनमत आई॥
इन मार्गन के जानन हारे, मोहत योगी नहीं हमारे॥
हे अरजुन ताते मम काला, योग युक्त की कीजे ख्याला॥

श्लोक—वेदेषु यज्ञेषु तपः सुचैव दानेषुयत्पुण्य फलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदंविदित्वा योगीपरं स्थान मुपैति चाद्यम्॥

दोहा—याको जानि मनुष्य सो, वेदध्ययनहु आदि।
यज्ञ दान तप पुन्य फल, अधिकाधिक फल लादि॥

सर्व अति क्रम करत सो, जो यह जानन हार ॥
सर्वोत्तम अस्थान सोई, पावत मुक्ति अपार ॥
॥ इति ॥

इति श्रीमद्भगवत् गीता सूपनिषत्सुब्रह्म विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे अक्षर ब्रह्म योगो नाम अष्ठमोऽध्यायः

सोरठा—यह कीरति की ओर, नेक नजर कीजै प्रभू ।
नहि रसना में जोर नाथ चरित्र अपार कृत ॥
॥ इति ॥

श्रीमन्दीनानाथर्पणमस्तु शुभम् ।

नौवाँ अध्याय

श्रीमते रामानुजायनमः

सोरठा—श्रीगुरु परम दयाल, सुद्धि बुद्धि मेरी करो ।
श्रीगीता कृत माल, सुधरिस कै यह कीर्ति से ।।

श्लोक - इदंतु ते गुंह्यतमं प्रवक्ष्याम्य न सूयवे ।
ज्ञानं विज्ञान सहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।।

दोहा—सात, आठ अध्याय में, आप स्वरूप बखानि ।
भक्ती ही से यह कही, अब प्रभाव नव आनि ।।

चौपाई-अब प्रभाव सर्वोत्तम निज का । नववें में कहते प्रभु तिनका ।।
अरु मिश्रित प्रभाव भक्ती करि । कहत कृष्णसुन अर्जुन रिपुअरि ।।
यह अति गुप्त करन के योगू । सहित ज्ञान विज्ञान नियोगू ।।
देखि अन्य गुण दोष लगाई । ताके रहित तोहि लखि भाई ।।
सो समुझाय कहूँगा तुम से । छूटे दुःख संसारी जिन से ।।
भक्ती ज्ञान यही विधि सोई । वस्तु गोप्य सर्वोत्तम जोई ।।
अति पवित्र उत्तम यह भाई । फल प्रत्यक्ष रूप दरशाई ।।
धर्म युद्ध मे सुगम महाई । अरु यह अविनाशी कृत पाई ।।
सम्बन्धी यह धर्महुँ श्रद्धा । नहिं धारत जो सो जिय बद्धा ।।
प्राप्त होत नहि मो मंह जाई । मृत्यु रूप जगमें भरमाई ।।
यह सब जगत सूक्ष्म ही पाई । अन्तरयामि रूप मम आई ।।
व्याप्त मोहिं में हैं यह सारा । भूत प्राणि है स्वाधीन हमारा ।।
अस्थित उनमें रहतो नाही । नहि तिनके स्वाधीनहुँ माहीं ।।

दोहा—स्थित हम मे है नहीं, भुत प्राणिहूँ जान ।।
जिमि घट में जल तैसही, हैं नहिं मोमहँ मान ।।

छन्द—यह ईश्वरी सम्बन्ध देखहु योग हे अरजुन सही।
भरण पोषण हार भूतो काहि आत्मा मम सही॥
भूत जीवात्मा को धारकहूँ शरीर हमार है।
हूँ न स्थित में जनों में यहां मम मत सार है॥
सुनो अरजुन प्रलय में सब भूत प्राणी प्रकृति में।
लीन होते आय फिर यह कल्प काल अनादि में॥
उतपन्न करता हूँ बहुरि आश्रय प्रकृति दैके तहाँ।
प्राचीन स्वाभावों के वश सम्पूर्ण शिर जू हूँ तहाँ॥
शृजता हूँ, बारम्बार मैं वह भूत प्राणिन को सदा।
यदि कहो अरजुन विषम सृष्टी क दोषी मैं सदा॥
विषम सृष्ठी निर्दयत्वक दोष किमि नहि होयगा।
तो सुनो जो सृष्टि कारक कर्म सब मैं कहूँगा॥
आशक्ति उन कर्मों में रहि के अरु उदासी सम सदा।
ऐसे हमैं वे कर्म वन्धन बाँधि सकते नहि कदा॥
दोहा—जब सम्हारने वाल मैं, सर्व कृती का होउ।
तब मेरे कृत प्रकृति यह जग उतपन्नक सोउ॥
चौपाई—जगत चराचर सब का जाई। प्रकृति करत उतपन्न सदाई॥
यहि कारण जग उतपति सारी। लीजै अरजुन हृदै बिचारी॥
जो राक्षसी आसुरी तुम सम। धारत प्रकृती मोहकार सम॥
निष्फल ऐसे स्वभाव वाले। निष्फल कर्मों आशा वाले॥
निष्फल कर्म ज्ञान सब तिन के। भ्रष्ट चित्त वाले कृतिजिनके॥
जो भूतन ईश्वर ईश्वर मैं। ऐसे वे नहिं जानत को मैं॥
नहिं जानत प्रभाव पुनि मेरा। मूरुख अति करुणा ते घेरा॥
हूँ स्थित मानुष शरीर में। मोरि अवज्ञा करि शरीर में।
दैवी प्रकृति प्राप्ति जो पाई। हे अरजुन सो देव सुनाई॥

वे महात्मा जन हम काहीं । जानत आदि भूत हम काहीं ॥
और मोहि अविनाशी जानी । मन अनन्य वाले विज्ञानी ॥
भजन हमार करै दिन राती । जिमिचातक चाहत जल स्वाती ॥

दोहा—सकल महात्मन भजन की, रीति कहूँ समझाय ।
भजन कीर्तन मोर हित, करै ध्यान दृढ़ लाय ॥

छन्द—संकल्प दृढ़ाई ध्यान लगाई यत्न प्राप्ति हित मेरी ।
करि भक्ती मेरी दृढ़मति केरी करहि समागम हेरी ॥
कोई सांख्य भावसे मोहि चावसे दासभाव कृत केरी ।
तहँ कोई वात्सल्यहु कोई शृंगारहु करत भावना मेरी ॥
कोई सकल व्यापिनी दुख विनाशिनी करत वन्दनामेरी ।
करिज्ञान यज्ञकृत पूजन मोहि कृत जन उपासना मेरी ॥

दोहा—अग्निष्टो मादिक सबै, श्रुतिन सकल फल जानु ।
यज्ञ स्मारतहूँ मही, यज्ञ पंच हूँ मान ॥

चौ०—स्वधाश्राद्ध पितरन करि जोई । कर्म मानि लीजे मोहिं सोई ।
औषध अन्न महीं सो जानो । औरहुँ मंत्र मोहि को मानो ।
अग्नि होम घृतहूँ में ही हूँ । जानहुँ पारथ निश्चै सेहूँ ।
जगका मात पिता मोहि जानो । और पितामह भी अनुमानो ।
जानन योग्य सोऊ मोहि जानी । वस्तु पवित्रहु ॐत मोहिं मानी ।
रिग्वेदो ॐकार मही हूँ । सामवेद अरु यजुर्वेद हूँ ।
यह जग की गति पालन हारी । हूँ मैं ही यह लेहु विचारी ।
साक्षी शुभअरु अशुभ कर्म का । अरु अस्थान रहनहित घरका ।
इच्छित वस्तू देने हारा । अरु अनिष्ठ निरधारन हारा ।
सुहृद उत्पती और नाश का । धारण करन अस्थान तासका ।
अविनाशी हूँ उर्तपति वाला । सर्व मही हूँ लखि ले हाला ।
मैं ही अग्नि सूर्य बपु धारी । हूँ तपता उर लेहु विचारी ।

दोहा—मैं ग्रीष्मादिक रितुन में, करता वर्षा बन्द।
अरु वर्षा रितु में तहाँ, वर्षाता स्वच्छन्द॥

चौ०—मैं ही अमृत मृत्युहूँ भाई। अरु सत असत मोहि कृतपाई॥
इमि ज्ञानिन व्यवहार उचारा। महात्मा कृत सार अपारा॥
वैभव आपन कहा बनाई। अस कामी जन रीति बताई॥
वेदत्रयी तीन विधि गाई। साम यजुर ऋग्वेद सुहाई॥
इन्द्र निमित्त यज्ञ को करके। सोमपान करि अघ को तजिके॥
इन्द्र रूप आराधत मोहीं। ताते इन्द्र लोक गति तेहीं॥
स्वर्ग जाय भोगत दिवभोगा। जबलों क्षीण नहीं कृत योगा॥
पुण्य क्षीण होने से भाई। मानुष लोक प्रकट में आई॥
ऐसी वेदयत्री धर्म को। बार बार यहि करत कर्म को॥
यहसकामि जनकी गति पाई। आउब जाब स्वर्ग तक भाई॥
जो अनन्य जन भये हमारे। करत चिंतवन मोहि विधि धारे॥

दोहा—मैं देता उनके विषय, क्षेम योग हर्षाय।
औरहु संरक्षण करूँ, पुनरावृत्ति मिटाय॥

चौ०-अन्य देव देव कृत पूजन जोई। श्रद्धा युत सो मोरहिं सोइ॥
किन्तु पार्थ वह अबिधिक पूजा। नहिं करते विधि पूर्वक पूजा॥
मोहि सरवज्ञ भोक्ता मानो। करि निश्चै हे अरजुन जानो॥
स्वामी मैं ही हूँ सवेश्वर। नहिं सकाम जन जानत ईश्वर॥
करि निश्चै मोहि जानि न पाई। ताते जन्म मर्ण गति छाई॥
यदि यह कहो कर्म है एकू। संकल्पहि कृत भेद न नेकू॥
तहँ यह सुनो जो देव इन्द्र को। आराधत सो प्राप्त उन्हीं को॥
पितृ भक्त पितृन में जाई। प्राप्त होत नहिं संशय पाई॥
आराधन जो जेहि कर धरहीं। सो तैसी प्राप्ती अनुसरहीं॥
जो मेरी करि भक्ति दृढ़ाई। मिलत मोहिमह सो सुख छाई॥

अथवा हमरी समता पाई। संशय यामे नेक न भाई।
यदि यह कहो बड़ेन के हेतू। करन प्रशन्न बड़ा चहि नेतू॥
दोहा—सोऊ हे अरजुन सुनो, पत्र फूल फल जोय।
शुद्ध चित्त भक्ती सहित, अर्पैं लेता सोय॥
छन्द—सुलभ ऐसा जान अरजुन, भाव यह उर में धरो।
जो करो कुछ पार्थ तू तो मोहिं कृतअरपण करो॥
होम मख बहु दान तप जो जो शुभाशुभ कुछ करो।
अर्पि हमको छूटि जावो कर्म बन्धन नहीं परो॥
योग मय सन्यास चिन्तक मुक्ति को पाये भये।
प्राप्त होवहु मोहिं अर्जुन सकल शुभ छाये भये॥
सम सर्व भूतो पर हु मैं प्रिय अप्रिय मेरे नही।
किन्तु निज भक्तों के उरमें भक्त मम उर है सही॥
जो कदाचित हो पुरुष कोई दुराचारी महा।
अन्य भाग न देत करि कृतमोहिं हित साधू महा॥
कुण्डलिया—ऐसे वह हमको तहाँ, सम्यक निश्चै कीन।
ताते होई शीघ्र ही, धर्मात्मा मुद भीन॥
धर्मात्मा मुद भीन, प्राप्त मुक्ती तिन होई।
निश्चै जानो पार्थ दास मम नाशन जोई॥
निश्चै आश्रय मोर जौन पापिहूँ होई।
वैश्य शूद्र स्त्री हूँ गति उत्तम तिन जोई॥
दोहा—ब्राह्मण छत्री भक्त जो, तो इनमें शक काह।
मोक्ष लहै शंका नहीं, याते भजु मोहि चाह॥
श्लोक—मन्मना भव मद् भक्तो मद्याजीमां नमस्कुरु।
मामे वैष्यति युक्त्वै व मात्मानंमत्परायणः॥

दोहा—मन मेरे में युक्त करि, पूजा करै हमार।
नमस्कार मेरा हि पुनि, लहै परायण सार॥

इति श्रीमद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे राजविद्या राज गुह्य योगो नाम नवमो अध्यायः

दोहा—कीरति दीन मलीन लखि, करहु कृपा वृजराज।
नाथ निवाहन अब पड़ी, शरण पड़े की लाज॥

॥ इति ॥

दसवाँ अध्याय

दोहा—श्री गुरु परम दयाल यह, गीता अर्थ सम्हार।
'कीर्ति' फँसी मझधार में, नइय्या पार उतार॥

श्रीभगवान उवाच

श्लोक—भूय एव महावाहो शृणु मे परमंवचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामिहितकाम्यया॥

दोहा—महा बाहु अरजुन सुनो, सर्वोत्तम मम बात।
प्रीति युक्तएवाक्य जो, कहूँ तोर हित तात॥

चौ०–जन्म हमार भया यह पाई। देव महर्षि न जानत भाई॥
कारण की मैं देवन देवा। और महर्षिन हूँ यह भेवा॥
जेहि अजन्म हमार दरशाई। लोक महेश्वर हूँ लखि पाई॥
सो ज्ञानी मनुष्य वहि जानो। सर्व पाप तिन आसु नसानो॥
क्षमा ज्ञान वुद्धि अरु व्याकुलता। तप अमु सम दम और सत्यता॥
दुःख सुक्ख उतपति भय नासा। अभय अहिंसा समता खासा॥
यश अरु अयश दान सन्तोषा। भूतौ के ये भाव विशेषा॥
न्यारे न्यारे भाव देखाई। यह मेरे ही से सब पाई॥
रिषि मरीचि वसिष्ठहु भाई। चारि महा ऋषि पूर्वहिं पाई॥
सनकादिक चौदह मनु होई। सो मेरे संकल्पज जोई॥
मन इच्छा प्रमाण उपजाई। जिनके लोक प्रजा ये पाई॥
जो कोउ पुरुष महर्षि आदि की। उत्पत्ति रूप विभूति याद की॥
अरु कल्याण गुणादि रूप को। जानत जो पुनि योग तत्व को॥

दोहा—अचल योग भक्ती लहै, मुक्त होत हठि सोय।
यामे कछु संशय नहीं, करहु पार्थ तुम जोय॥

छन्द—स्थान उतपति सर्व का ही हूँ प्रवर्तक मैं सदा।
मानि मुझको भाव युत ज्ञानी भजन करते सदा॥
मोहिं में मन लगा करके स्वास अरु प्रति स्वासपर।
सो परस्पर याहि भावहिं धारना मेरी जू कर॥
दूसरे को देत हैं उपदेश निश्चै करि तहाँ।
तुष्ट होते हैं महा गुन गान मेरा करितहाँ॥
क्रीड़ा हमारी की भई को करने वे लगते तहाँ।
ऐसे निरन्तर मेरे संगी प्राप्ति पूर्वक भजि तहाँ॥
बुधि योग ऐसा में तिन्हैं देताहूँ आक्तसे तहाँ।
जिस करके मुझको प्राप्त होते वे मेरे जनभी तहाँ॥
दोहा—मनोवृति में मैं तहाँ, रहा भया उन केहि।
दया हेत यह मानके, तिमिर नाशकरि देहिं॥

अरजुन उवाच

परब्रह्म हो तुम प्रभू, श्रेष्ठ प्रभाव तुम्हार।
परम पवित्र हु हो सदा, रिषिजन करत उचार॥
छन्द—रिषि कहत अविनाशी तुम्हें अरु दिव्य पुरुष महान हूँ।
आदि देव अजन्म व्यापक कहत सो मैं जान हूँ॥
पुनि रिषि ये सब देव रिषि हैं करहिं जौन बखान हैं।
अन्यथा होगा नहीं जो कहत रिषि मतिमान हैं॥
व्यास नारद असित देवल आपहू से सुन रहा।
अहो केशव जो कहा तुम सत्य ही मैं धरि रहा॥
कारण कि सत्यहि उत्पती नहिं जानते प्रभू आपको।
नहि देवता अरु दानवहुँ कोई न जानत आपको॥
हे भूत भावन देव देव भूतेश हे पुरुषोत्तमा।
जो दिव्य सर्व विभूति प्रभु की सुनन की इच्छा हमा॥

सो सविस्तार से सकल कहि सकत हो केशव तुमा ।
कारण कि उनहि विभूति करिके ख्यात हो तुम लोकमा ।।
होताहिते सांमर्थ तुम बरनन विभूतिन तोसमा ।।
करहु सब समभाय केशव सब विभूतिन क्रृत हमा ।।
मैं योग युक्त भक्ती हुआ यों ध्यावता हूँ आपको ।
कैसे जानूंगा तुम्हें भगवान स्वरूपहुँ आपको ।।
तुम मेरे करिके कौन कौनहि रूप ध्यावन योग्य हो ।
सो बतावहु करि दया वह आप ही तो योग्य हो ।।

दोहा—अहो जनार्दन आपनी, प्राप्ति उपाय बताय ।
अरु विभूति वैभव सकल, मोहि देहु समुझाय ।।
कहो फेरि विस्तार से, सुधा सरिस माहात्म ।
सुनने से होती नहीं, तृप्त हमारी आत्म ।।

भगवान उवाच

दोहा—हे अरजुन तुमसे सबै, दिव्य विभूति बताय ।
अन्त न मम बिस्तार का, कहूँ मुख्य दरसाय ।।

।। चौपाई ।।

गुड़ाकेश सुनिये मम वानी । अन्तःकरन भूत मोहि जानी ।।
बसहुँ निरन्तर भूतन माहीं । अन्तरयामी लखहु तहाँहीं ।।
मैं ही अन्त मध्य हूँ आदी । सुनिये अरजुन धरि अहलादी ।।
आदित्यन में विष्णु नाम के । मैं ही हूँ आदित्य भान के ।।
मैं ही शब्द जहाँ जहँ आवै । तहँ तहँ अधिक विभूति लखावै ।।
ज्योतिन किरिणिवंत मोहि जानो । महत मरीचि पवन हूँ मानो ।।
अरु चन्द्रमानक्षत्रन माहीं । हूँ मैं धरु निश्चै उर माहीं ।।
वेदन सामवेद मोहिं जोई । इन्द्रहुँ हूँ देवन में सोई ।।
अरु इन्द्रिन में मन मोहि जानो । भूत प्राणि क्रृत चेतन मानो ।।
रुद्रन में मैं शंकर सोई । धनद यक्ष राक्षस में जोई ।।

अष्ट वसुन में अग्नि मही हूँ। शिखरन में परवत सुमेरु हूँ ॥
मुख्य वृहस्पति पुरोहितन में। मेरे ही को जानहु सब में ॥

दोहा—सेनापति हूँ में लखो, स्वामी कार्तिक मोहिं ॥
अरु समुद्र सरवरन में, मैं ही हूँ लो जोहिं ॥

छन्द—भृगू मैं हूँ महर्षिन में लखो ॐकार वर्णों में।
यज्ञ में जप यज्ञ हूँ स्थावर हिमाचल जानु में ॥
सर्व वृत्तन में हूँ पीपर देवरिषि नारदहुँ मैं।
गंधर्व में हूँ चित्ररथ सिद्धन कपिल जानो हमैं ॥
अश्व जो अमृत से निकला सो उच्चैःश्रवा हूँ मही।
धेनुन में हूँ मैं कामधेनू वज्र शस्त्रन में मही ॥
करिवर में ऐरावत मही नर में नराधिप हूँ मही।
पृथा सुत सब कुछ चराचर जो है सो सब हूँ मही ॥
उत्पत्ति करने हार सो बहु कामदेवहुँ हूँ मही।
एक शिर वाले उरग में वासुकी जानो मही ॥
अरु अनेकन शीस में भी शेष जी जानो मही।
कहूँ क्या कुन्ती सुवन हूँ सब विभूति मही मही ॥

दोहा—जल जीवों में वरुण हूँ, पितर अर्यमा जान।
शासन करने हार में, यम हूँ मैं यह जान ॥

छन्दबरवै—दैत्यन में प्रहलाद हुँ मोहिं को जान।
अनरथ कारक जग को कालहु मान ॥
बीरन में अरजुन मोहिं जान जितेन्द्र।
गरुड़ जान पच्छिन में मृगन मृगेन्द्र ॥
पावन पवनहुँ मोहीं करु अनुमान।
सकल शस्त्र विधि ज्ञाता रामहुँ जान ॥

नदिन मध्य में गंगा मोहीं मान ।
जलचर जीवन में मोहिं मकरहुँ जान ॥
हे अरजुन सब विधि सो मोहिं पहिचान ।
सत्य सत्य सब सार मोर कृत मान ॥

दोहा—सर्ग जो ब्रह्मा के दिवस, तामे आदि मिलाय ।
अन्त प्रलय अरु मध्य हूँ, मैं ही रक्षक पाय ॥

॥ चौपाई ॥

विद्यन में विद्या अध्यात्मक । वादिन में मैं हूँ सिधातक ॥
अक्षर में अकार मोहि जानो । द्वंद्व समास समासन मानो ॥
औरहु अक्षय कालहूँ मैं हीं । सर्व भरण पोष्क पुनि मैं हीं ॥
सर्व हरण सो मृत्यु महीं हूँ । निज बढ़ती में उद्भवहूँ हूँ ॥
स्त्रीन में पुनि कीर्त्ति महीं हूँ । स्मृति मेधाश्री वाक्य महीं हूँ ॥
धृति अरु क्षमा मोहिको जानो । अरजुन सत्यसत्य यह मानो ॥
सामवेद के मंत्रन माहीं । वृहंत साम जानो हम काहीं ॥
छन्दों में गायत्री मंत्रहिं । जानो मोंहि महीना शीर्षहिं ॥
रितुन वसंत मानि मोहि लीजै । छलमें जुवा मोहि गुनि लीजै ॥
तेजस्विन में तेज महीं हूँ । अरु जै जीतन वालेन में हूँ ॥
निश्चै वालेन में निश्चै हूँ । अरु उदार कृत्त उदार मैं हूँ ॥
बृष्णीवंस में वासुदेव हूँ । पाण्डव में अर्जुन तुम में हूँ ॥

दोहा—मुनि में व्यासहुँ हूँ महीं । कवि हूँ में यह जान ।
सुक्राचारज के विषय, हूँ मैं ही यह मान ॥

छन्द—स्ववस करन में दण्ड हूँ जै चहन वालेन नीति हूँ ।
गुप्त करन उपाय में हूँ मौन ज्ञानिन ज्ञान हूँ ॥
अहो अरजुन सर्व भूतौ का जो कारण आदि है ॥
सो सर्व मैं ही हूँ चराचर भूत मो बिन सोन है ॥

अहो अरजुन ए हमारी दिव्य का नहीं अन्त है।
किन्तु करि संक्षेप दीन बताय सर्व विभूति है ॥
जो मनुज ऐश्वर्य युत अरु होय शोभा मान हूँ ॥
हो वड़ा अथवा उसे सम अंश युत अनुमान हूँ ॥
दोहा—हे अरजुन यह जानि बहु, कहा प्रयोजन तोहिं ॥
एक अंश मोहि सर्व जग, धारण करता जोहिं ॥

—:o:—

इति श्री मद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे विभूति योगो नाम दशमोऽध्यायः ।

सोरठा—हे प्रभू दीनानाथ, वेगि दया अब कीजिये।
'कीरति' होय सनाथ, राखि लेहु यहि शरण में ॥
॥ इति ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

॥ श्रीमते रामानुजायनमः ॥

सोरठा—धरि चरणों में ध्यान, श्री गुरुवर महराज के ।
जामे हो कल्यान, यह कृत 'कीरति' मुद लहै ॥

❀ अर्जुन उवाच ❀

श्लोक—मदनुग्रहाय परमं गुह्य मध्यात्म संज्ञितम् ।
यत्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयंविग तो मम ॥

दोहा—मोर अनुग्रह हेत प्रभू, सर्व गुप्त प्रगटाय ।
अरु अध्यात्मक ज्ञान भी, जन उत्पत्ति बताय ॥

॥ चौपाई ॥

आत्मा ज्ञान विषय प्रभु बचना । मम हित मोह विदारक यतना ॥
ता कृत मोह बिलग ह्वै गयऊ । आगे दर्श हेत मन भयऊ ॥
कमल नयन कारण यह याहीं । उतपति प्राणिन की तुम पाहीं ॥
औरहु प्रलय सहित विस्तारा । नाश रहित माहात्म तुम्हारा ॥
हे परमेश्वर तुम जेहि भाँती । कहो आपको तैसहि ख्याती ॥
हे पुरषोत्तम शक्ति ज्ञान बल । तेज वीर्य ऐश्वर्यहु यहि बल ॥
छायैश्वर्य युक्त प्रभु रूपा । चाहहुँ मैं देखन यदु भूपा ॥
जो वह रूप दर्श के लायक । होय हमारे तो यदुनायक ॥
तो तुम अविनाशी वह रूपा । देहु देखाय मोहिं तद रूपा ॥

❀ श्रीभगवान उवाच ❀

हे अरजुन सहसन लाखन को । बहुत प्रकार देखु रूपन को ॥
वहुत वर्ण अरु दिव्य बहुत हूँ । आकारहुँ पुनि देखु बहुत हूँ ॥

दोहा—हे भारत मम देह में, द्वादस सूर्य निहार ।
रुद्र एकादस अष्ट वसु, अरु अश्विनी कुमार ॥

चौ०—मरुत् देखु उन्चासहुँ काहीं । प्रथम न दीख सोलखु मोहि माहीं ।।
इस मम देह चराचर सारा । देखु जगत सब एकहि बारा ।।
गुड़ाकेश यहि देखहु आजू । सब आश्चर्य मोहिं कृत साजू ।।
तुम निज दृष्टी में हम काहीं । सकहु देखि दिव्यन कृत नाहीं ।।
ताते दिव्य दृष्टि तुम देहीं । जाते ईश्वर कृत लखि लेहीं ।।

संजय उवाच

संजय कहत सुनो धृतराष्ट्रा । महाकृष्ण योगेश्वर ठाटा ।।
यों कहि तहाँ सिरी भगवाना । सर्वोत्तम जो रूप निधाना ।।
सो ईश्वर सम्बन्धी काहीं । दिखरायो तहँ अरजुन पाहीं ।।
जामे बहु मुख अरु बहु नैंना । अरु अनेक दर्शन मुद ऐना ।।
दिव्य अनेक अभूषण सोहै । आयुध दिव्य उगाये सोहै ।।

दोहा—दिव्य बस्त्र धारण किये, माला दिव्य सोहाय ।
चंदन लेपन दिव्य हीं, सब आश्चर्य देखाय ।।

छन्द—आश्चर्य मय तहँ सर्व दिव्य प्रकाश अन्तर हित भई ।
सब ओर मुख जिसमें है ऐसा रूप अरजुन हेतई ।।
जिमि होय सहसन सूर्य तेज प्रकास एकहिं साथ में ।।
अस तेज एकहि बार सिरि भगवान के शुचिगात में ।।
उन देव तान प्रकाश की श्रीकृष्ण चन्द्र शरीर में ।।
न्यारे न्यारे को इकट्ठा लखत पार्थ गँभीर में ।।
यह देखि बिस्मय व्याप्त ह्वै रोमांच युत अरजुन तहाँ ।।
कर जोरि कींन्ह प्रणाम अरजुन कृष्ण से बोले वहाँ ।।

अर्जुन उवाच

दोहा—तव शरीर में हे प्रभू, एक ठौर सब काहिं ।
देख रहा हूँ मैं सही, अद्भुत रूप लखाहिं ।।

छन्द—हे देव तुम में देखता हूँ इस समय मैं सबन को ।
सकल को ।। भूत अरु प्राणी समूहन देखता मैं

ब्रह्मा तथा कमलासनी ब्रह्माण्ड में जो स्थित रहा।
सो आपही को रिषिन युत दिबि उरगहूँ को लखिरहा॥
अहो विश्वेश्वर मैं तुमको देखता सब ओर से॥
जगत में जो कुछ विभूती सो तुहीं नहिं और से॥
हो अनन्त हूँ देखता हूँ रूप और न देखता॥
आदि मध्य व अन्त में तूहीं तुहीं यह देखता॥
मैं देखता हूँ गदावान किरीटवान भी हो तुँहीं॥
चक्रवान भी देखता हूँ तेज राशि प्रकाश हीं॥
सब ओर अगिनि प्रदीप्त सी अरु सूर्यकान्ति समान भी॥
अपरिमित है रूप तेरा और देखा कान्ति भी॥

दोहा—हे मुमुक्षु जन प्राण हो योग सिरी भगवान।
सर्वोत्तम विष्णु तुम्हीं, विश्व अधार महान॥

चौ०—रक्षण धर्म सनातन जोई। अविनाशी तुहीं प्रभु सोई॥
जिनके अन्त मध्य नहिं आदी। अमित पराक्रम ज़न अहलादी॥
चन्द्र सूर्य जिन नैन महाना। अग्नि सदृश मुख हेमतिमाना॥
विश्व तपाय मान सोइ आजू। इमि देखत तुम को यदुराजू।
पोलापन ब्रह्माण्डक जोई। करि वपु एक व्यास तुम सोई॥
दिसा व्याप्त सब तुमहीं माहीं। महा शरीर नाथ के माहीं॥
ऊँचाई ब्रह्माण्ड पोलाई। चौड़ाई करि दिशीं पुराई॥
अद्भुत उग्र रूप प्रभु हेरी। व्याकुल जीव त्रिलोकी तेरी॥
ये देवन समूह प्रभु पासा। प्राप्त भये बहु कृत भय त्रासा॥
ज़ोरे हाँथ आप गुन गाई। सिद्धि महर्षि स्वस्ति झरि लाई॥
यहि विधि अस्तुति बहुत प्रकारा। करत नाथ की अमित हज़ारा॥
अष्ट वसू आदित्यहु आदी। ग्यारा रुद्र और सनकादी॥

दोहा—श्रध्य नाम उप देवहू, विश्व देवहूँ सोय।
मरुत तहाँ उष्मासहूँ, कुमर अश्वनीं जोय॥

सोरठा—और पितर गन्धर्व, यक्ष देवता सिद्ध सब।
है समूह इन सर्व, विषमित ह्वै तव तन चितै ॥
चौ०—जिनमें बहु मुख नेत्र देखाहीं। भुज जंघा अनेक दरशाहीं ॥
जिनसे उदर चरण बहु ताई। दाढ़ो करि विकराल महाई ॥
ऐसा महत रूप प्रभु तेरा। जिहि विधि व्याकुल लोक घनेरा ॥
ऐसे मैं हूँ व्याकुल नाथा। अहो महाबाहो जदुनाथा ॥
जो प्रभु प्रकृति परे आकाशा। स्पर्शहु तँह लग आवासा ॥
वर्ण अनेक युक्त परकाशू। रूप तोर हे रमानिवासू ॥
तद्यपि मुख फैलावन सोई। अग्नि प्रदीप नेत्र प्रभु जोई ॥
यहि विधि तुम्हैं देखि मैं सोई। व्याकुल चित्त धीर नहिं होई ॥
है दाढ़ै कराल जिन माहीं। कालानल के तुल्य देखाहीं ॥
ऐसे मुख तुम्हार प्रभु देखी। जानि पड़त नहिं दिशाविशेखी ॥
होत प्राप्त सुखहूँ में नाहीं। लखि स्वरूप अस चकित महाहीं ॥
सब समूह राजन के जाई। अरु धृतराष्ट्र पुत्र सब आई ॥
कर्ण द्रोण अरु भीष्म महाना। और मुख्य योधा मम नाना ॥
दोहा—तिनके सहित तुम्हैं दिखे, दिशा जान नहिं जाय।
और प्राप्त सुख को नहीं, कछू न मोहिं दरशाय ॥
छन्द—अति वेग करिये सर्व होते प्राप्त दाढ़ों के तरी।
जिन दाढ़ अति विकराल प्रभु मुख करि प्रवेश उतावरी ॥
कितनेक चूर्णहुँ ह्वै गये मस्तक सहित तव रदन में।
रद संधि में अटके भये, दीखै हैं प्रभु के बदन में ॥
इस हेतु जगत निवास हे देवेश आप कृपा करो।
हम डरि रहे यह हेत प्रभु अब प्रथमवत् वपु फिर धरो ॥
जैसे नदिन के वेग बहु धावत समुद्रहिं सन्मुखे।
तिमि वीर ये नर लोक के प्रज्वलितं मुख घुसि अति दुखे ॥
जिमि वेगवन्त पतंग निज ही नाश के हितं चाव से।

करि प्रवेश प्रदीप्त अग्नी त्योहिं ये सब आप से।
मुखो करि के सबन को प्रज्वलित अनल समान सो।
सब ओर घेरे सर्व लोगन चाटि खाते असन सो।
है प्रकाशहु उग्र यों सब जगत को निज तेज से।
परिपूर्ण होकर तप रहे हो नाथ खास प्रकाश से॥
यह उग्र रूपी देव वर ऐसे महा तुम कौन हो।
प्रावृत्ति नहिं जानत तुम्हारी हेतु यह लखि सोक हो॥

दोहा—आप आदि जोई प्रभू, जानन इच्छा मोर।
नाथ कृपा करि कहहु सो, तुम्है प्रणामहु मोर।

श्रीभगवान उवाच

दोहा—मैं इन लोगन के विषै, वढ़ा भया हूँ काल।
इनही के संहार को, प्रगट भया हूँ हाल॥

चौपाई—जो ये जोधा सकल तुम्हारे। शत्रु सैन में खड़े अपारे॥
तुम बिन ये रहिहैं कोइ नाहीं। निश्चै तुम जानो यहिं माहीं॥
थे मरिहैं निश्चै करि मानो। उठो जीति रिपु यश गहि आनो॥
सव्यसाँचि ये अर्जुन बीरा। शत्रु जीति करु राज्य गँभीरा॥
द्रोण जयद्रथ भीष्महु आदी। कर्ण तथा अरु शूरहु आदी॥
इन मेरे मारेन को मारी। मति करु दुख उठु रण जै भारी॥

संजय उवाच

संजय कह धृतराष्ट्र भूप से। तहँ किरीट अरजुनहु नाथ से॥
कंपत तन सूखे मुख माहीं। करि प्रणाम अरजुन तेहिं ठाहीं॥
गद गद कंठ युक्त दृग वारी। श्रीकृष्ण से विनै पुकारी॥

❀ अर्जुन उवाच ❀

हृषीकेश तब उत्तम कीर्ती। करि के जग आनंदित रीती॥
सर्व करै तहँ प्रभु से प्रीती। राक्षस तव तकि मानत भीती॥

सिद्धि समूह सर्व तप पाहीं। अस्तुति करि फिरि उर हर्षाहीं॥
सो यह योग्य तुम्हैं गोविंदा। सत्र कृत सार चर्ण अरविन्दा॥

दोहा—ब्रह्मा से भी तुम बड़े, कर्ता आदि महान।
क्यों न मनन तुमको करें, ज्ञान और गुण गानं॥

छन्द—देवेश जगत् निवास और अनन्त हो प्रभु आप हीं।
स्थूल प्रकृति अरु वर्ण तुम हो सूक्ष्म माया आपही॥
कार्ण तत्पर आत्मा सब कुछ तुम्हीं जदुराज हो।
याकि अन्तरयामि हो तुम हीं सकल सिरताज हो॥
आदि देव पुराण पुरुषहुँ विश्व के आधार हो।
यह योग्य जानन जानने वाले तुम्हीं सब सार हो॥
वास्थान सर्वोपरि तुम्हीं हो और रूप अनन्त भी।
यह व्याप्त है सब विश्व तुम्हीं करके हो अद्भुत सभी॥
पितामह प्रापितामहो यम चन्द्र वरुणहु ताश मो।
हो पवन सर्वस्व तुम ही सहस वार नमो नमो॥
सब भरा प्रभू तुमहिं में है आदि देव नमो नमो।
हे सर्व तुम ही को अगारी औ पिछारी से नमो॥
पुरुषोत्तम हो सकल दिशि ते प्रणति तुम हीं को करूँ।
बार बार नमामि तुमको त्राहि हौ चरणन परूँ॥
है पराक्रम अमित तुम में बल अमित तुम में भरा।
व्यापक शकल में हो इसी से सकल रूप तुमें सरा॥

दोहा—हे अच्युक्त महिमा तेरी, और तुहारा रूप।
हौ प्रमाद अघ से भरा, नहिं जानत तद रूप॥

चौपाई—प्रणय प्रमाद लाय मैं माना। सखा भाव तुमको जो जाना॥
यह प्रमाद उर मानि भलाई। हे यादव हे कृष्णहु गाई॥
ऐसे कहि हठ से मोहिं जानी। करहु क्षमा प्रभु शारँग पानी।
आशन भोजन क्रीड़ा सैना। कीन्ह सकल अपराधहुँ ऐना॥

सखन संग अरु इकलेहु माहीं। बहु अपराध भया हम पाहीं॥
कीन्ह नाथ अपमान जो भारी। क्षमा करहु मोहिं दीन निहारी॥
हे सर्वोत्तम अन्तर यामी। पिता चराचर के तुम स्वामी॥
सर्व गुरुन में गुरू बड़े हो। पूज्य त्रिलोकी याहीं से हो॥
तीन भुवन में सब से भारी। हो तुम हे सरवेश बिहारी॥
ताते मैं शरीर महि धारी। करूँ प्रणाम दयाल तिहारी॥
ईश्वर हो तुम अन्तर यामी। याते अस्तुति करत नमामी॥
पुत्र पियार हेत पितु जोई। सखा प्रिया हित सखा है सोई॥

दोहा—तिमि मेरे प्रिय आप हो, तिहि कृत मम अपराध।
आप सहन के योग्य हो, यामे कुछ नहिं बाध॥

कुण्डलिया—जो स्वरूप मैंने प्रथम सुन्यो और से नाहिं।
मैं अरु औरहुँ कबहु नहिं निरख्यो यह वपु काहिं॥
निरख्यो यह वपु काहिं चकित सोई लखि रूपा।
भयते व्याकुल भया मोर मन देखि स्वरूपा॥
देव देव हे जगन्नाथ मम दाया हेरी।
है प्रसन्न दरसाऊँ रूप प्रथमहिं कृत फेरी॥

दोहा—विश्व मूर्त्ते सहस भुज, सुनिये विनै हमार।
शिर क्रिरीट कर गदायुत, मन चह दर्श तुम्हार।

सोरठा—बहु शोभा सुकुमार, धारि चतुर्भुज रूप प्रभु।
वात्सल्यता अपार, सौम्य गात इमि दर्श दे॥

श्री भगवान उवाच

दोहा—सर्व आदि अन्तर्हितहु, विश्व रूप युत तेज।
तुम बिन अन्य लखा नहीं, सत्य सत्य यह तेज॥

चौपाई—सत संकल्प स्वरून योग से। दिखलाया तुमको प्रसन्न से।
श्रेष्ठ वीर कुरु वंशिन में तुम। जो देखा दुर्लभ वपु है तुम॥
यह मनुष्य लोकन के प्राणी। सुना न दीख न अबलों जानी॥

औरन के पुनि किये उपाई। होत न दरश कबहुँ यह ध्याई॥
जप तप दान मंत्र कृत कर्मा। क्रिया योग करि नाना धर्मा॥
करे उग्र तप यह सब लाई। तब हूँ दुर्लभ दर्शनपाई॥
ऐसा घोर रूप यह मेरा। देखि दुखित मति होउ घनेरा॥
मोह भावहूँ भी मति राखो। तुम फिर वही रूप रस चाखो॥

संजय उवाच

दोहा—ऐसे कहि बसुदेव सुत, पूर्व रूप फिरि कीन।
जो थे बड़े शरीर युत, सौम्य रूप धरि लीन॥

अर्जुन उवाच

दोहा—अहो जनार्दन आपका, सौम्य रूप यह देखि।
अब सुचेत मेरे भया, सावधान तब पेखि॥

श्री भगवान उवाच

छन्द—जो अतिहि दुर्लभ रूप मेरे को लखा अरजुन सही॥
यह रूप अद्भुत के विषै सुर रहत अभिलाषी सही॥
अहो अरजुन जिस तरह यह रूप तुम मेरा लखा।
तस वेद कर नहिं पावहीं अरु दान तप से नहिं चखा॥
नहिं यज्ञ करके भी कोई अब लो निहारा है इसे।
हो परंतप भक्त तजि नहिं अन्त पाया है इसे॥
करि भक्ति मोर अनन्य जन दृढ़ भाव है अन्तर नहीं।
प्राप्ति तिनको है सकत नहिं देख सकते भी नहीं॥
जो पुरुष मेरे लिये अरजुन सुनो कर्ता यही।
छोड़ि वैदिक कर्म लौकिक सर्व कृति मेरी गही॥
मेरे को सब से जानि उत्तम मानता है जो चही।
अरु भक्त मेरा मेरे बिन सम्बन्ध संगति करि नहीं॥
निर्बैर होकर सकल प्राणिन में जो रहता है सही।
सो भक्त मेरा प्राप्त मुझको होता है निश्चै यही॥

इति श्री मद्भगवतगीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे विश्व रूप दर्शन योगो नाम एकादशोऽध्यायः ॥

दोहा—कीरति कृत अज्ञान हरि, देहुं नाथ पद प्रेम ॥
भव रूपी चिन्ता मिटै, होय बहुरि यह छेम ॥
॥ इति ॥

शास्त्रे

बारहवाँ अध्याय

श्रीमते रामानुजायनमः

सोरठा—जिन पद सुमिरे होय, सिद्धि सिरी गुरुवर चरन।
सुफल मनोरथ जोय, 'कीरति' सो सुमिरति सदा ॥

श्लोक—एवं सतत युक्ताये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योग वित्तमाः ॥

संजय उवाच

दोहा—सिरी कृष्ण भगवान से, सुनि दोऊ महिमा काहिं।
तहँ अरजुन पूछत भये, कर जोरे मुद माहिं ॥

अर्जुन उवाच

दोहा—भक्ति योग युत भये जो, भक्ति आपकी कीन।
अन्त यही अध्याय. के, उपासनहुँ कहि दीन ॥

चौ०-भक्ति योग युत जो जन भाये। अरु उपासना करि मुद छाये ॥
सो प्रभु कहहु सर्व समुझाई। अक्षर आत्म स्वरूप देखाई ॥
इन दोनों में कौन प्रधाना। कहहु बुझाइ कृष्ण भगवाना ॥
आप उपासक श्रेष्ठ देखाई। या है ज्ञानी श्रेष्ठ महाई ॥

श्रीभगवान उवाच

भक्ति योग युत श्रद्धा होई। जेहिं जन मन ममहित असजोई ॥
करै निरन्तर भजन हमारा। अस योगिन में श्रेष्ठ निहारा ॥
जो समूह इन्द्रिय नियमन में। करि सर्वत्र बुद्धि समगम. में ॥
सर्व भूत हित रत दिन राती। अनिर्देश्य सब विधि सब भाँती ॥
तिन शरीर शब्दों करि माहीं। कहने में आवै अस नाहीं ॥
इन्द्रिय गोचर है पुनि नाहीं। सुर शरीर कृते रहत दिखाहीं ॥

ध्यानरूचिन्तन में है नाहीं। कूट स्थिति सबहीं जग माहीं ॥
स्वयं स्वरूपहिं में स्थिर जोई। यह है पुनि अचलहुँ कृत सांई ॥
याते नित्य आत्मा जानी। भजत सो अक्षर कृत विज्ञानी ॥
आत्महिं अनुसन्धानत जोई। प्राप्त वहू मेरे को होई ॥
दुःख दशा पूर्वक सो होई। आतम ज्ञान कृत्ति यह जोई ॥
प्राप्त देंह धारि से याकी। व्यक्ता शक्त क्लेश अति ताकी ॥

दोहा—सर्व कर्म करि मोहिं में, जो पुनि अर्पण कीन।
अहो पृथा सुत तिन जनन, करि उद्धारहुँ दीन ॥

चौ०-करि भक्ती अनन्य जो मेरी। ध्यावत पूजत है मुद घेरी ॥
ऐसे मोमें चित्त लगाई। तिनको थोड़े कालहिं पाई ॥
यह सागर रूपी संसारा। करत उवार न लागति वारा ॥
याते तुम मोहिं में मन लावो। मेरे हीं में बुद्धि लगावो ॥
यह मन बुद्धि लगाये माहीं। रहि हो मम संग संशय नाहीं ॥
स्थिर चित कदापि हो नाहीं। नहिं लगाय सकु मन मों माहीं ॥
जो अभ्यासहु दुशह देखाई। तो करु पूजन कर्म दृढ़ाई ॥
मेरे अर्थ कर्म करि सारे। तबहूँ प्राप्ती निकट हमारे ॥
जो अशक्त तुम याहूँ माही। तो करु सावधान मन काहीं ॥
भक्ति योग करि आश्रय सोई। त्याग कर्म फल तजि करिजोई ॥

दोहा—होय ज्ञान कल्याण कर, अभ्यासहु से सोय।
ज्ञान भये पुनि होत है, सब विचार विधि जोय ॥

छन्द—जब होत ज्ञान विचार दृढ़ तब कर्म फल त्यागन किया।
कर्म फल के त्याग से वैराग्य युत शान्ती लिया ॥
जो द्वेष तजि कर सकल जन का मित्र और दयाल है।
अहमिति व ममता सुख दुःख पै हो सदा सम ख्याल है ॥
सन्तुष्ट है जोइ लाभ हो अरु क्षमावान महान है।
है निरन्तर भोगवानहु भक्ति में रह ध्यान है ॥

जित चित्त निश्चै दृढ़ मुझे मन बुद्धि में धारे भये।
अस भक्त प्रिय हमको सदा हे पार्थ निश्चै मोहिलयै ॥
जिस करि के कोई जीव पावै त्रास अरु नहिं दुःख भी।
उद्वेग ईर्षा हर्ष भय से रहित मम कर सुक्ख भी ॥
दोहा—जो सम्बन्ध हमार बिन, रहित अपेक्षा सर्व।
सुद्ध अहारी है तथा, कृत्य बाहरी धर्व ॥
चौ०-जल मृत्तिका बाहरी सुद्धी। अरु है अन्तर चित की सुद्धी ॥
अनुष्ठान निज धर्म चतुरता। तैसहिं पुनि पवित्र विस्तरता ॥
शत्रु मित्र सम भाव दिखाई। भेद रहित करि कर्म सदाई ॥
फल आरंभ कि ममता त्यागी। अस जन मोंहि पियार सभागी ॥
जो नहिं हर्ष वस्तु सुख मानी। द्वेष करै नहिं दुःखहु मानी ॥
शोक निमित्त शोक नहिं करहीं। इच्छा हर्षकार नहिं धरहीं ॥
जो शुभ अशुभ कर्म का त्यागी। मोर भक्त मोहिं प्रिय बड़ भागी ॥
शत्रु मित्र में सम तैसाहीं। मान और अपमानहुँ माहीं ॥
शीत उष्ण सुख दुख सम जोई। विषयों की आसक्तिहुँ खोई ॥
निन्दा अस्तुति तुल्य समाई। स्वतः प्राप्ती में सुख लाई ॥
घर में अनासक्त पुनि होई। अस्थिर बुद्धि भक्त मम सोई ॥
दोहा—जो श्रद्धा धारे भये, सर्व मोंहिं का जान।
अमृत, स्वरुपी ध्यान मम, करत लहत कल्यान ॥

इति श्री मद्‌भगवद् गीता सुपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुन संवादे भक्ति योगो नाम द्वादशऽध्यायः
दोहा—'कीरति' को दीजै प्रभू, चर्ण भक्ति कर दान।
दीन दयाल उदार लखि, कीनी विनै महान् ॥
॥ इति ॥

तेरहवाँ अध्याय

॥ श्रीमते रामानुजायनमः ॥

सोरठा–जै श्री गुर वर राज । जै जै जै पद कंज तव ॥
कीरति की अब लाज । राखहु गीता पूर करि ॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

श्लोक–इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्र मित्य भिधीयते ।
एतद्यो वेति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥

दोहा—यह शरीर पुनि क्षेत्र है । कुन्ती सुतकर ध्यान ।
देह क्षेत्र अरु आत्मा । है क्षेत्रज्ञ महान ॥

चौ०–क्षेत्रज्ञान वान है जीवा । हूँ परमात्मा मै मुद पीवा ॥
जो क्षेत्रज्ञ क्षेत्र कर ज्ञाना । सो बिदेह वह ज्ञान प्रधाना ॥
अंगीकार ज्ञानसो मोहीं । सत्य लेहु कुन्ती सुत जोहीं ॥
आत्मा परमात्मा दूनोको । करि प्रमाण श्रुतिविशेषता को ॥

प्रमाण

॥ श्रुति ॥

श्लोक–द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्योऽभिचाक शीति ॥

चौ०-दुइ पक्षी यक संग रहइया । सखा परस्पर सहस उड़इया ।
एक वृक्ष पर सम पुनि रहनी । उनमें एक स्वाद फल अहनी ॥
बिन फल खाये दूसर सोई । करत प्रकाश स्वाद फल मोई ।
तिमि ईश्वर अरु जीवहु काहीं । रहत परस्पर संग सदाहीं ॥
एक सरीखहि रहत देह मे । जीव शरीर जन्य है तिनमे ।
जीव कर्मफल भोग न खांसा । ईश्वर शाक्षी मात्र प्रकासा ॥
दूसर अर्थ यहाँ यह पाई । देह आतमा मोहि कृत भाई ।

इन दूनो का अन्तरयामी । अर्जुन जान महीं हूँ स्वामी ॥
देहांतर्यामी यह जीवा । जीवांतर्यामी हम सीवा ॥
अर्थ यहाँ वह सिद्ध लखाई । जाकी विधि हम तुम्हें बताई ॥
ईश्वर जीव कहत जो एकू । ताके हित पुनि करत विवेकू ॥
यहाँ अर्थ पंचाइत मानी । होन विशेष तर्क अनुमानी ॥

श्रुति

॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः ॥

अंतर्यामित्व मे तौ ईश्वरः सर्व भूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति । नतदस्ति विनायत्स्यान्मयाभूतं चराचरम् । यस्यात्मा शरीरंय आत्मनितिष्टन् य आत्मा न मंतरो यमयति यमात्मा नवेद सते आत्मा अमृत । इत्यादिक श्रुति प्रमाणनम् ॥

दोहा—क्षेत्र जौन जिस द्रिव्य का, अरु जिन आश्रय भूत ।
पुनि विकार निज हेत से, जौन प्रयोजन नूत ॥

छन्द—उतपन्न जाके हेत है अरु वर्तमानहुँ रूप जो ।
क्षेत्रज्ञ वह युतरूप जो जेहि विधि प्रभाव अकूत जो ॥
संक्षेप से मैं कहूँ तुमसे सुनो अर्जुन ध्यान से ।
क्षेत्रज्ञ औरहुँ क्षेत्र का है वहुत यथा स्वरुप से ॥
पाराशरादिक रिषिन ने रिग्वेद यजुरहुँ वेद को ।
साम वैदौं की तहाँ करि दीन अमित प्रकार को ॥
अरु ब्रह्म प्रति पादन करन हारे जो न्यारा करि कही ।
व्यास कृत हूँ सूत्र रूपी पद शरीरहि कृत कही ॥
जो युक्त कारण सहित ही सिद्धांत करने वाल है ।
क्षेत्रज्ञ क्षेत्र स्वरूप का उनका भी न्यारा ख्याल है ॥
सो सर्व मैं संक्षेप से कहिहौं सुनो अर्जुन तहाँ ।
सुनहु अब सब ध्यान दे तुम बीर वर ज्ञानी महाँ ॥

दोहा—पंच भूत यह है सोई, क्षेत्र द्रव्य निरमान।
और कार्य दश हैं तहाँ, और एक हूँ जान॥

छन्द नराच

अव्यक्त महत्तत्व बुद्धि अहंकार जानिये।
उतपत्ति क्षेत्र द्रव्य प्रकृति शूक्ष्म रूप मानिये॥
एकादश संख्य इन्द्रियान मीत मानिये।
कर्ण त्वचा नेत्र जीभ नासिका सो जानिये॥
पाँच ज्ञान इन्द्रिया सुकर्म पाँच मानिये।
वाग हस्त पांव पायु शिश्नहूँ पिचानिये॥
पाँच एहु कर्म इन्द्रिया इन्है नुमानिये।
स्वान्त को मिलाय रुद्र संख्य इन्द्रियानिये॥
स्पर्श शब्द गन्ध रूप रसहुँ पाँच धारिये।
इन्द्रियो के है ये विषय सर्व भाँति जानिये॥

दोहा—सुःख दुःख संघातहूँ। इच्छा द्वैष मिलाय।
ज्ञान सक्ति धृति क्षेम से। भूत समूह बताय॥

छन्द—ज्ञान साधन की कही अब क्षेत्र कार्यन में भला।
कहत भगवन फिर वही जो ग्रहण करनी कृतभला॥
श्रेष्ठ जनमे मान का नहिं चाहना करना भला।
कर्म रूपी धर्म लोक देखाव दंभ नहीं भला॥
अन्य पीड़ा रूप हिंसा का नहीं करना भला।
हीन बल अपने से हो अपराध नहिं गनना भला॥
सरल राखि स्वभाव सबसे सहन रूप सदा भला।
मन बचन क्रम से गुरू की सेवा सदा करना भला॥
मृत्तिका जल आदि से सुचि बाहरी करना भला।
अरु चित्त से असमरन ईश्वर शौच अस करना भला॥

ज्ञान आत्मा मेहि अस्थिर होयकर रहना भला।
निरवारि मन सरवत्र से ईश्वर में लाना ही भला॥
गुणबुद्धि इन्द्रिय विषय में मनका नहीं लाना भला।
देह सम्बन्धी वस्तुमें अहं नहि करना भला॥

दोहा—जन्म मृत्यु पुनि बृद्धता। मेकरि विमल विचार॥
रोग देह कृत रूप दुख। यह सब द्वन्द विकार॥

❀ चौपाई ❀

बिन आतम आसक्ति न आना। सुत ग्रह नारि लिप्त दुख जानां॥
इष्ट अनिष्ट वस्तु के हेतू। निरत चित्त सम रहै सुनेतू॥
योग अनन्य धारि हम माहीं। रहै एकान्त सदा मुद माहीं॥
ज्ञान आत्म सम्बन्ध विचारा। तत्त्व ज्ञान नित्यता सारा॥
ऐसे हम यह ज्ञान बखाना। जो अन्यथा सो है अज्ञाना॥
जो ज्ञानन मे योग्य महाई। सोइमि कहत सुनहु मन लाई॥
जाके नियम मोक्ष फलं पाई। उत्तम सो अर्जुन दरसाई॥
रहित जन्मने अनादि जो है। श्रेष्ठ यही ते अति प्रिय सोहै॥
है स्वाधीन हमारें सोई। जीवप्रकृति मुक्तहुँ सुचि होई॥
सत अरु असत कहुन ते नाहीं। वह आत्मा आवत केहुँपाहीं॥
कारण कार्य अवस्था दोऊ। रहित तहाँ दूनो से सोऊ॥
हाँथ पाव वाला वहि जानो। सब ओरहि से आत्मा मानो॥
मुख नासिका नेत्र सब ओरा। अमित श्रवण अतिही बरजोरा॥
दोहा—व्यापक ह्वै कर रहत है। वस्तु सर्व सब लोक॥
मुक्त जीव कृत सब कहा। यह स्वरूप निर सोक॥
चौ०—मुक्त दशा में समता पाई। जीव आत्मा एक लखाई॥
सोई गीता में दरशाई। और सूत्रहूँ में लखि पाई॥

श्लोक

इदं ज्ञानमुपा श्रित्यमम साधर्म्य मागताः सूत्र भोगमात्र साम्य लिंगाच्च × और भी × तथा विद्वान पूएय पापे विधूय निरंजनः परमं ताम्य मुपैति।

चौ०-जो समता परमात्मा पाई। तो स्वरूप में शंक न लाई॥
वृत्तिन करिके इन्द्रिन केरी। विषयन जानब अधिक करेरी॥
अरुस्वभाव निज यहि विधिलाई। रहित इन्द्रियन सब में पाई॥
इंद्रिय वृति विना सो पाये। विषय कृत्ति असमर्थ लखाये॥
है नहिं देव शरीरहुँ माहीं। जो आसक्त धरे तन काहीं॥
गुण सत्वादि रहित है सोई। भोग वान वह गुण कह सोई॥
मुक्त अवस्था आत्मा सोई। बाहर पृथिव्यादि कृत जोई॥
वृद्धावस्था भीतर होई। अचरहुँ स्वयम् आपही सोई॥
चर है पुनि संयोग देह से। सूक्ष्महुँ जानन योग्य न तेहिसे॥
अज्ञानिन कृत दूर सदाहीं। अरु ज्ञानिन समीप दरशाहीं॥

दोहा—भूत विकार सो भूमिमें। अरु शरीर देवादि॥
सदा एक रस रहत है। ज्ञानि देह सुर आदि॥

॥चौपाई॥

ज्ञानिन कृत देवादि शरीरा। देव शरीर सदृश लखु धीरा॥
पशु मनुष्य अरु देव चिन्हारी। पड़ति सर्व लखि न्यारी न्यारी॥
अस्थित देखि पड़त तहँ याहू। सरिस विभक्त केर पुनि ताहू॥
षोषक सर्व भूतका सोऊ। भक्षण अन्न भूत है जोऊ॥
देह रूपसे करै अहारा। अन्नहि से विकार विस्तारा॥
उतपति करता है पुनि सोई। अन्नहि कृतविकार विधि जोई॥
सूर्य प्रकाश दीप्ति वह सोई। सूक्ष्म कारण रूपहूँ जोई॥
भिन्न लखो प्रकृती से सोई। ज्ञान रूप जानन कृति जोई॥

प्राप्त ज्ञान से होवन योगू। सबके हृदय रहत सत भोगू।।
मानुष पशु पक्ष्यादि जीव में। रहत जीव सब कृत शरीर में।।

ऐसे

महाभूतान्य हंकारः ।। यहाँ से लेकर ।। शंघातश्चेतनाधृतिः
यहाँ परियन्त । क्षेत्र कहा तथा। अमानित्वं। यहाँ से लेकर।
तत्व ज्ञानार्थ दर्शनं—यहाँ परियन्त ज्ञान कहा और अनादिमत्परं
वहाँ से लेकर । हृदि सर्वस्यधिष्ठितं। यहाँ परियन्त ज्ञेय।।

आतम स्वरूप कहा दरशाई। संक्षेपहि से दीन सुनाई।।
भक्त अहै मम एते ज्ञानी। प्राप्तहोत मुदयुत मोहिं मानी।।

दोहा—प्रकृति पुरुष अरु जीव को, इन द्वै को बतराय।
लेहु सनातन मानि तुम, अरजुन निश्चे लाय।।

चौ०-है जो वंधन कारक कर्मा। सुख दुख इच्छाद्वेषहु भर्मा।।
और मोक्ष कारण गुण जोई। आमानित अदंभगुण सोई।।
निश्चे पूर्वक सो यह मानी। संभव प्रकृती में सब जानी।।
इच्छायुत विकार दरशाई। वंधनपुरुष प्रकृतिहीं पाई।।
अमानित्य गुण युक्त जो होई। दायक मोक्ष लेहु तिन जोई।।
यक सँग प्रकृति पुरुष के माहीं। कहियो कार्य भेद कृत काहीं।।
कार्य देह परिणाम प्रकृति यह। कारण देह लखहु अर्जुन तह।।
मन युत इन्द्रिय तिन व्यापारू। करवावन में प्रकृति सहारू।।
सुःख दुःख भोगन के माहीं। कारण पुरुष कहा यहि माहीं।।
आश्रय सो धन भोग करमकी। युक्त पुरुष परिणाम प्रकृति की।।
देह तथा सुख आदि भोग को। आश्रय पुरुष सर्व भोगन को।।
रहा भया प्रकृतिहि के माहीं। जाके हेत पुरुष यह वाही।।
प्रकृति जन्य गुण भोग कराई। जन्मत ऊच नीच तहँ जाई।।

दोहा—ऊच नीच योनिन विषय, जन्म प्रकृति सँग पाय।
अरु सत्वादिक संगही, मुख्य तहाँ दरशाय।।

चौपाई—देखन हार देह में सोई । है वह पुरुष चौकसी जोई ॥
अरु अनुमोद देखनेहारा । पोषण देह भोगने हारा ॥
अरु याकर माहेश्वर सोई । मन इन्द्री ईश्वर तन जोई ॥
याते न्यारा जीव देह से । देह एक नहिं जान ज्ञान से ॥
जो अस जीव जानि पुनि लेहीं । अरुप्रकृतिहुँ को लखि अस लेहीं ॥
सो सब भाँति जो है संसारा । तबहूँ जन्म न फेरि निहारा ॥
कितने पुरुष बुद्धि निज लाई । अन्तःकरण विचार उपाई ॥
लेत जानि जीवात्मा काहीं । कितनेहुँ साँख्य योग्य के माहीं ॥
कितने कर्म योग करि ज्ञानी । कर्म अर्पि ईश्वर कृतं मानी ॥
कितने दूसर से सुनि जानै । करि उपासना मम कृति मानै ॥
कितने श्रद्धा युक्त तहाँहीं । श्रवणहि भरि करितरि सबजाहीं ॥

दोहा—जो स्थावर जंगमहुँ, से अर्जुन मति मान ।
होत जीव उतपन्न जो, क्षेत्रनक्षेत्र प्रमान ॥

चौपाई—जीव देह कृत संगहि पाई । होत सर्व उतपन्न सदाई ॥
जो सम रहै सर्व भूतन में । इन्द्रिय मन केवल ईश्वर में ॥
जो इन्द्रियन नाश के माँहीं । नाश रहित जानत जिव काँहीं ॥
जो अस जीव इन्द्रियन देखी । सो जानत सर्वथा विशेखी ॥
देव शरीर सकल यक साही । रहे भये जो सम यहि माहीं ॥
मन गुत इन्द्रि आदिकन सोई । ईश्वर जीव आत्मा जोई ॥
बुद्धि पूरवक आपहि जोई । गिरत नहीं संसारहि सोई ॥
गति पुनि लहत परम मुद मोई । पावत मुक्ति न शंसय कोई ॥
जो जानत सब कर्महि काहीं । करे भये प्रकृतिहि कें माहीं ॥
अरु जिन हेत अकरता मानी । सो जानत सब वर विज्ञानी ॥
जब देवादि मनुष्यन माहीं । पृथक भाव लखि प्रकृती पाहीं ॥
देह छोट पृतरई मोटाई । अरु इत्यादि मिलाय बड़ाई ॥

दोहा—भिन्न भिन्न यह भाव सों, देखत प्रकृतिहिं माहिं ॥
पुत्र आदि विस्तार हूँ, प्रकृति मई दरशाहिं ॥
छन्द—तव सुद्ध प्राप्त स्वरूप होता आशुही वह आप से ।
अविनाशि यह जीवात्मा है पाँडु सुवन अनादि से ॥
स्थित है केवल देह में निर्गुणपने के भाव से ।
करता नहीं कुछ कर्म त्योंही लिप्त नहिं फल कर्म से ॥
आकाश जैसे प्राप्त है सर्वत्र सूक्ष्म भाव से ॥
भूतगुण करि लिप्त होता है नहीं उन आब से ॥
तिमि सर्व जीव शरीर आदिक में रहत जीवात्मा ।
नहिं लिप्त होवत गुणो करके यह महा जीवात्मा ॥
जिमि एक रवि सब लोक में करि देत आशु प्रकाश है ॥
तिमि जीव सर्व शरीर में यह करत आप प्रकाश है ॥
दोहा—क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का । ज्ञान दृष्टि जो जोहि ॥
भूत प्रकृति, अन्तर विषय । जानत प्राप्तसों मोहि ॥

—:o:—

श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्वादे प्रकृति पुरुष विवेक योगो नाम त्रयोदश अध्यायः ॥

सोरठा—कीरति को अब होय । चरण सहारो आशुहीं ।
भव दुख दीजै खोय । दीनानाथ दयालु मम ॥

॥ इति ॥

———

चौदहवाँ अध्याय

॥ श्रीमते रामानुजायनमः ॥

सोरठा—गुरु पद पद्म पराग। वार वार विनवत तिन्हें ॥
मोर होय अनुराग। गीता ईश्वर कृष्ण में ॥

श्लोक—परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञान मुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धि मितोगताः ॥

दोहा—उत्तम जो सब ज्ञान में। सिद्धि भया जो ज्ञान।
सो फिर मैं तुमसे कहत। सुन अरजुन धरि ध्यान ॥

चौ०—जाके जाने मुनि जन सारे। मुक्ति परमपद आशु सिधारे ॥
सो वह ज्ञान कहत तुम पाहीं। मुक्त भये फिर उतपति नाहीं ॥
महद्ब्रह्म यह प्रकृति हमारी। उत्पति स्थान भूत कृत भारी ॥
जीव रूपको धारन हारी। वही प्रकृति ममकृत्त विचारी ॥
तव सब भूत उत्पती होई। हे अरजुन यह नियमहु जोई ॥
देव मनुष्यादिक सब जाई। योनिन में पुनि जंनमत भाई ॥
कारण प्रकृती महद ब्रह्म की। उत्पति हैं तहँ सब भूतन की ॥
तिनमें चेतन रूप बीज सों। देनहार हूँ पितामहीं सो ॥
होत प्रकृति से ये गुण सारे। सतरज तम ये तीन अपारे ॥
जो यहि देह जीव अविनाशी। बंधन करत जीव अविनाशी ॥
हे निस्पाप सुनो तिन माहीं। निर्मल सतो अहै सब पाहीं ॥
शुभ अरु अशुभ कर्म का साखी। रोग रहित पुनि विमल स्वभाखी ॥

दोहा—सुख आसक्ती ज्ञान सँग। करि यह बँधत बनाय ॥
शुभ कर्मी सो ज्ञान से। स्वर्ग आदि सुख पाय ॥

चौपाई—फिर उत्तमकुल में जनमाई । बँधत ज्ञान सुख यहि विधि पाई ।
स्त्री तृष्णा धन आदिक में । करनहार आशक्ति प्रबल में ॥
रजो गुणी विषयन से प्रीती । जीव कर्म संग बाँधव रीती ॥
प्रीत्यात्मकी करम कृत जोई । कर्म संगि कृत जन्महु सोई ॥
सर्व देहधारी जीवन की । तमोगुनी मोहन गति तिनकी ॥
कारण यह अज्ञानहिं जानो । प्रमाद निद्रा आलस मानो ॥
बंधन याही कारण पाई । सतरज तम गुण तीनहूँ गाई ॥
यद्यपि गुण प्रकृती के सारे । तद्यपि करि विपरीत विचारे ॥
सतो रजोगुण जीतहिं आशू । प्रवल सत्व गुण होय प्रकाशू ॥
रजो सतो गुण जीते जोई । प्रवल तमों गुण होवे सोई ॥
त्योंही सतो तमोगुण जीती । प्रबल रजो गुण की यह रीती ॥
तहाँ कर्म कारण प्राचीना । और अहार कीन सुख भीना ॥

दोहा—भरत वंश में श्रेष्ठ तुम । हे अरजुन मति मान ।
निश्चय वस्तु यथार्थ जो । सोई उत्तम ज्ञान ॥

छन्द—सो ज्ञान जब उत्पन्न होवे वढ़े तव सतगुण महा ।
रजोगुण के वढ़े लोभी और चंचलता महा ॥
करत कर्म अरंभ इन्द्रिन की है लोलुप्ता महा ।
विषय इच्छा युत तहाँ उत्पन्न गुण रज से महा ॥
तमो गुण बढ़ने से होती हानि तहँ सुविवेक की ।
अरु निरुद्यमता तहाँ पुनि होति कार्य सुचेत की ॥
करतव्यको करना नहीं और अकृति को करिकाम है ।
विपरीत इतने होत अरजुन तहाँ तिनके ज्ञान है ॥
जो सत्व गुणवाले जनोंको होत मरण सुकालमे ।
आत्म ज्ञानी शुद्ध लोकन प्राप्त सुःख विशाल में ॥
रजोगुणा की वृद्धि में जो मृत्यु को करि प्राप्त है ।
कर्म करि लहि स्वर्ग संगनि जन्मले फिर ख्याति है ॥

फिर जन्म उनहिन में लहै फिर कर्मफिरसोइ स्वर्गहै ।
तमो गुणहूँ धार जन्मत अन्त नीचन वर्ग है ।।
सुकृत सत्विक कर्म फल निर्मल कहू तुम से सही ।
करत सुकृति सो कर्म मुक्ती अमित जन्मन में लही ।।

दोहा—रजो गुणी तहँ कर्म का । फल दुःखद हैं सोय ।
यह सकाम से स्वर्ग है । फेरि मृत्यु फिर सोय ।।

चौपाई—तमोगुणी फल है अज्ञाना । अज्ञाना कृत नर्क निदाना ।।
कर्म सात्विकी ज्ञान महाना । त्यो राजस से लोभहुँ माना ।।
अज्ञानहुँ अरु मोह महाई । तामस से यह दूनहु पाई ।।
सात्विक कर्मी मुक्ती पाई । राजस मृत्यु स्वर्ग सुख पाई ।।
पुन्य कृत्ति करि स्वंर्ग कमाई । क्षीण पुन्य नर लोक गिराई ।।
तमो गुणी नीचन कृति पाहीं । लेत जन्म नीचन के माहीं ।।
नीच जाति पशु कीट आदि में । बहुरि बहुरि जन्मत तिनतिनमें ।।
पुरुष विवेकी बिना सतो गुण । करता और न जानत केहु गुण ।।
न्यारा निजको गुण से मानी । सो प्राप्ती समीप मम जानी ।।
जीव देह धारी पुनि सोई । सत रज तम उलंघि पुनि जोई ।।
जन्म मृत्यु अरु जरा दुःख से । मोक्ष लहत जो छूटत इनसे ।।
गुण के युक्त प्राप्ति नहिं पाई । यह सति जानहु अरजुन भाई ।।

अरजुन उवाच

दोहा—जो तीनौ गुण से विलग, तिन्हें चिन्हारी काह ।
कौन आचरण बाल वह, किमि उलंघि प्रभु पाह ।।

श्रीभगवान उवाच

सोरठा—अहो पाँडु सुत जोय, प्रश्न महा हम प्रतिकरी ।
उत्तर देइहों सोय, सुनो चतुर अब प्रिय सखा ।।

छन्द तोमर-आरोग्य पुरुष महान, तिन सतोगुण निरमान ।
अरु रजो गुण के धर्म, सो प्रवृति कारक कर्म ।।

सोइ तमो गुन अनुमान, यह मोह कार्य महान।
जब तमो प्रकृति लखाय, तब त्याग चाहन भाय ॥
पुनि ह्वै निवृत्तिहुँ माहिं, नहि चाहता इन काहि।
अरु उदासीन सरीख, अस्थित भया अस दीख ॥
गुण करिके हूँ यह जान, होता चलाय नमान।
पुनि आप कार्य न आप, गुण ही प्रवर्त्तक थाप ॥
अस अस्थिती में होय, सुख दुःख में सम जोय।
कंचन व पत्थर कोय, पुनि भाव एकहि जोय ॥
अप्रिय प्रिय सम जौन, निन्दा स्तुती में तौन।
सम जानता यह मान, अपमान मान समान ॥
रिपु मित्र हूँ यकं भाव, मोहिं तजि न दूसर चाव।
सम सेव नादेक लाग, करि सब आरंभक त्याग ॥
यह गुणा तीत कहाय, अरजुन समझ चितलाय।
दोहा—धर्म रहित जो मरण है, जाके हेतु लगाय।
अविनाशी जो ब्रह्म है, मुक्त जीव सँग लाय ॥
मुख्य रूप सुख प्राप्ती, भक्ति योग जो धर्म।
तिनका सर्व अधार मै, सुभ गति करिसतकर्म ॥

—:o:—

श्रीमद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुन संवादे गुणत्रय विभागो नाम चतुर्दशोध्यायः ॥
दोहा—कीरति पर करिये दया, देंहु चरण में प्रेम।
भवरूपी शंका मिटै, पद लहि पावै छेम ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

दोहा—करुणा सदन दयाल गुरु, पदे प्रमाण बहुबार।
गीता गान सुपूर्ण करि, कीर्ति लगावहु पार।

श्रीमतेरामानुजाय नमः

श्रीभगवान उवाच

श्लोक—ऊर्ध्व मूल मधः शाखमाश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छंदासियस्य पर्णानि यस्तं वेद सवेद वित्॥

दोहा—ज्यो पत्तो युत बाढ़ हीं। वृक्ष पाँडु सुत जान॥
तिमि यह शाखा वेदकी। पीपर कृत अनुमान॥

चौपाई—तिमि संसार रूप यह भाई। बाढ़त वेद कर्म हरि याई॥
ताते पत्ता रुपी वेदा। सत्य लोक तप मूल अभेदा॥
ब्रह्मा मूल अहै जेहि काहीं। अधः शाख मानहु पुनि याही॥
नीचे सात लोकके सोई। मनुज पतंग कीट पशु जोई॥
ये शरीर शाखा वाहीं की। सम्यक ज्ञान प्राप्ति नहिं जाकी॥
यह अज्ञान दशाके माँहीं। छेदन के अयोग्य दरशाहीं॥
है ज्ञानिन अविनाशी याते। पीपर विटप कहीं जग ताते॥
श्रुति पीपर द्रुम कहती सोई। जाको फल जानत जन जोई॥
सोई वेद जानने हारा। वेद अर्थ छेदन संसारा॥
जो जानत यहि अरजुन भाई। तेहि छेदन उपाय दर्शाई॥
याते वह वेदन कृत ज्ञानी। सत्य मान है उत्तम वानी॥

दोहा—अब संसारी वृक्ष को। और कहूँ समझाय।
अहै विलक्षण जौन यह। देहु तुम्हें बतराय॥

चौपाई

जिमि सत्वादि गुणो करि बाढ़ीं। पात शब्द विषया दिक काढ़ी॥
नये पात सम विषय निहारी। ऐसी अहै वृक्षकृत डारी॥

नीचे ऊँचे दोउ लोकन में । मनुज देव गंधर्वो दिक में ।
फैलि रही साखा इमि सोई । नीच कर्म कृत नीचे जोई ॥
मनु जहुँ में पशु आदिक नीचा । ऊपर उत्तम कर्मज सीचा ॥
शाखा देव शरीरी सोई । फैलि रही यह ऊपर जोई ॥
नीचे मनुज लोक के माहीं । करमज मूलै फैलि दिखाहीं ॥
ऊच नीच जो कर्मज सारे । सोई मनुष्य मूलकृत सारे ॥
ऊंचनीच पदवी पुनि जोई । बिना कर्म नर सरत नकोई ॥
यह संसार रूप द्रुमपाहीं । कहा सो उन कृत नहिं दरशाहीं ॥
अज्ञानिन कृत जानन माहीं । आवत नहिं पुनि अन्तहुँ नाहीं ॥
नहिं अस्थिति नहिं आदिहुँ पाई । जानन में हे अरजुन भाई ॥
दोहा—याते पीपर वृत्त की, अति दृढ़ मूल निहार ।
तहँ दृढ़ करि वैराग्य को, शस्त्र छेदने हार ॥
चौ०—फिर प्रवृत्त प्राचीनी पाई । गुण भय भोग रूप सँग लाई ॥
विस्तारित प्रवाह संसारा । आदि पुरुष शरण गत भारा ॥
ढूढन पद शरण गत होई । जाके गये न फिर भव जोई ॥
मान मोह के रहित जो होई । संग दोष पुनि जीती जोई ॥
नित अध्यात्म शास्त्र अनुरागा । सर्व कामना तजि सुख पागा ॥
द्वन्दक दुःख सुःख से छूटी । सो ज्ञानी जन पद रस लूटी ॥
प्राप्त होन पद अविनाशी को । स्वास्वरूप मुक्ती खाशी को ॥
सूर्य प्रकासि सकत हैं नाहीं । चन्द्रहुँ नहीं आत्मा काहीं ॥
अग्निहुँ सके प्रकाशिन तेहीं । जानहुँ अरजुन परम सनेहीं ॥
सुद्धात्मक स्वरूप में जाई । फिरि संसार न आवत भाई ॥
है वह परम घाम मम जानो । तहाँ निवास हमार सु मानो ।
है हमार शरीर वह सोई । कहत तहाँ श्रुति है यह जोई ॥
सोरठा—जो यह वरणन कीन, सोई सनातन अंश मम ।
हे अरजुन लखि यीन, जिउ अनन्त अरु प्रकृति मम ॥

चौ०-जीव अनंत प्रकृति पुनि सोई । है हमार सब विधि से जोई ।।
तामे एक हमारहि सोऊ । लखी विभूति हमारहि सोऊ ।।
जीव भूत सो यह यहि लोकू । अति शंकुचित ज्ञान अवलोकू ।।
पाँच ज्ञान इंद्रिया मिलाई । अरु मन एक संग करि पाई ।।
मन मिलाय छा प्रकृति विकारू । खैचत देह इंद्रियन सारू ।।
प्राप्त शरीर जीव जब होई । वर्तमान तजियत तन सोई ।।
तब मन ईश्वर जो इंद्रिन का । सेना रूप संग करि तिनका ।।
जिमि पुष्पादिक गंध मिलाई । पवन जात आशुही उड़ाई ।।
तिमि यह मन इंद्रिन कृत जानी । इंद्रिन संग जानहीं ज्ञानी ।।
श्रोत्रेंद्रिय जीवात्मा जानी । कान नेत्र अस्पर्श सो जानी ।।
इंद्रिय रसना घ्राण नासिका । इन आश्रै सेवत विषइन का ।।
यह गुण युक्त आत्मा नाहीं । दर्शि परत नहिं विषइन काहीं ।।

दोहा—देह रहित अरु देह में । विषय भोगने हार ।
अज्ञानी देखै नहीं । ज्ञानी दृष्टि विचार ।।

चौ०-योगी जनकरि यतन अपारा । देखत आत्मा विमल प्रकारा ।।
विषया सक्तजो यह कृत ध्यायी । शास्त्र द्वार उपाय हूँ लाई ।।
सोऊ देखसके वह नाहीं । अज्ञानी सुचि आतम काहीं ।।
सूर्य तेज जो जगत प्रकाशा । अग्नि चन्द्र जो तेजहुँ खाशा ।।
सो सब तेज मोर कृत जाना । अहो पाँडु नंदन मति माना ।।
मैं प्रवृष्ट धरणी मै सोई । नित अचित्य सामर्थहुँ जोई ।।
धाकर सर्व भूत कृत होऊ । चन्द्र अग्नि है औषधि सोऊ ।।
मैं पुनि हूँ जठराग्निहुँ सोऊ । सर्व भूत प्राणिनमे होऊ ।।
संयुत प्राण अपानहुँ माहीं । भक्ष्य भोज्य अप लेह्यहु काहीं ।।
अरु पय सहितक्षीरि परकारा । अन्न पचन कृत मोंहि निहारा ।।
हूँ प्रविष्ट सबदे: उर माहीं । मम कृत ज्ञान विचार जनाहीं ।।

असमृति सकल हमींको जानो । जानन योग्य वेद के मानो ॥
हूँ मैं करता वेदन सोई । वेदन करि जानव मम होई ॥
दोह—क्षर अरु अक्षर भेद ते । प्राणी दोय प्रकार ।
वध्य जीव कोक्षर कहै । अक्षर मुक्त विचार ॥
छन्द—है पुरुष उत्तम और इन दूनो से वह परमातमा ।
अविनाशि ईश्वर प्रवशि तीनों भुवन पोषण आतमा ॥
वद्ध वस्था श्रेष्ठ जीवो सेहुँ में जिससे सही ।
मुक्त से उत्तम सदा यह श्रुति स्मृतियों ने कही ॥
नाम पुरुषोत्तम हमारा याहि से अर्जुन परा ॥
जो जानता सम्यक पुरुष ज्ञानी ये पुरुषोत्तम परा ॥
सर्वज्ञ वह इस हेतु से हैं भाव सर्व मोहीं धरा ॥
सुहृद माता पितु धनादिक जानि मोहिसो भवतरा ।
यह गोप्य शास्त्र महान तुमको देखि मैं निषपाप है ॥
सत्र कहा समझाय याको जानि पुनि कृतकृत्य है ।

—o—

॥ छन्द ॥

श्री मद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु बृह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे पुरान पुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥

दोहा—प्रभु अपनावो कीर्ति यह । निज पद दासी जान ।
विपद विनाशन बान तव । दीनानाथ महान् ॥

॥ इति ॥

श्रीदीनानाथार्पण मस्तु शुभम् भूयात्

सोलहवाँ अध्याय

॥ श्रीमतेरामानुजाय नमः ॥

दोहा—मन नित उठि सुमिरन करो। सिरी गुरु चरण महान् ॥
वढ़ै जाहि ते कीर्ति उर। गीता कृत गुनगान ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

श्लोक—अभयं सत्व संशुद्धि र्ज्ञानि योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्याय स्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम् ॥
दयाभूतेष्व लोलुप्तं मार्दवं ह्रीर चापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नाति मानिता ॥
भवंति संपदं दैवी मभिजातस्य भारत ॥

दोहा—सिरी कृष्ण जी कहत यह। अर्जुन सुनहु सुजान।
दैवी संपद पाय नर। निरभय होय रहान ॥

चौपाई-सुद्धी अन्तःकरन महानी। आत्मा भिन्न प्रकृति से मानी ॥
असनिष्टासुपात्र की जानी। देन चही ताको कछु मानी ॥
विषयों से निवृत्त मन करना। ईश्वर निस्कामी ह्वै भजना ॥
करि पूजन भगवान महाई। यहि विधि पंच यज्ञ सो पाई ॥
वेद और मंत्रादिक जापा। वृत रूपी एकादशी थापा ॥
तपरूपी करि यकादशी का। सरल भाव सब प्रति धरनां का ॥
पीड़ा जीव मात्र नहिं देना। हित यथार्थ भाषण हूँ करना ॥
करना क्रोधकाहु पर नाहीं। सदा उदार शान्त कृत माहीं ॥
करना स्ववस इन्द्रियन काही। चुगुली नहिं करना केहुँ पाँही ॥

दया भूतप्राणी मात्रन पर । धन स्त्री इच्छा नहि कर पर ।।
लज्जा अक्रूरता न करना । व्यर्थ कामना मन नहिं धरना ।।
सहन सीलता धीरज राखी । ह्वै पवित्र कहु द्रोह न भाखी ।।
दोहा—मान मिलन के हेत पुनि । करव मान अति नाहिं ।।
यह गुण दैवी संपदा । के अर्जुन लखि जाहि ।।
चौपाई—जो संपदा आसुरी पाई । पृथा पुत्र सो सुनहु बनाई ।।
दंभ दर्प अभिमान अपारा । क्रोध कटुक भाषण उच्चारा ।।
अरु अज्ञानहुँ लक्षण ताके । जे आसुरी ज्ञान के बाँके ।।
जो दैवी सम्पदा सोहाई । मोक्ष प्राप्त के हेत उपाई ।।
अरु आसुरी सम्पदा जोई । बंधन हेत निश्च हीं सोई ।।
तुम दैवी सम्पद में जाई । प्राप्त भये नहिं शोचहु भाई ।।
दुइ प्रकार प्राणी यहि लोका । यक दैवी यक आसुरियों का ।।
दैवी करि विस्तार सुनाई । अब सम्पदा आसुरी गाई ।।
असुर स्वभाव बाल नर जोई । संसारहुँ साधन नहि होई ।।
साधन मोक्ष कहां फिर पाई । नहि उनकृत सुचिता दरशाई ।।
शास्त्रींय आचरणहुँ नाहीं । सत्यहूँ है नहिं तिनके माहीं ।।
असुर प्रकृतनर यह जगकाहीं । कोउ मिथ्याभ्रम करिवंतराहीं ।।
दोहा—जग का कुछ आधार नहि । कहत कोऊ अस बात ।।
कोऊ अनीश्वर कहत पुनि । इस्त्री पुरुष कृत स्यात ।।
चौ०-बिन नरनारि किये संयोगू । होय नहीं कृत अन्य सुयोगू ।।
इस्त्रि पुरुष संयोगहि पाई । होत जगत यह सत्य लगाई ।।
खान पान कृति में सब सानी । जे अज्ञानी जन अभिमानी ।।
अल्प पदारथ में बुधि जाकी । ऐसी समझग्रहण करि याकी ।।
उग्र कर्म के करता भारी । पर धन स्त्री हरन बिचारी ।।
मूढ़ कर्म करता इमि सोई । जगनाशन सब अनहित जोई ।।
नहि पूरी दुख से दरशाई । ऐसी महा कामना लाई ।।

दम्भमान मन युक्त हुँ होई। असद ग्रहण कर मन मुद मोई॥
वसी करन अरु मारन मोहन। भ्रष्ठा चार करत ह्वै मोहन॥
नख शिख अपवित्रता देखाई। भूतादिक सेवन मन लाई॥
प्राणांतक सम चिंता छाई। कामय भोग यहै मनुषाई॥
आशा शहस बँधेतिन फासी। काम क्रोध स्वाधीन हुलासी॥
काम भोग के हेत मिलाई। करि अन्याय द्रव्य संचाई॥
दोहा—जो पाया धन आज है। करब मनोरथ पूर॥
यह धन है अब तो मेरे। और और धन जूर॥
चौ०-जो यह बैरी को हम मारा। औरन हूँ को मारन हारा॥
मैं ईश्वर हूँ भोगी मैं हीं। हूँ बलवान सिद्धि सुख मैं हीं॥
मैं उत्तम कुल में जनमाई। ताते मैहि योग्यता पाई॥
को है मम समान पुनि आना। यज्ञ करब उत्तम दै दाना॥
हम आनन्द लहै अधिकाई। इमि अज्ञान मोहि बतराई॥
चित्त अनेकन जगह लगाई। मोह जाल भ्रमि फसे बनाई॥
काम भोग आसक्त महाना। अपवित्रहुँ तिन नरक निदाना॥
जे निज निजहि श्रेष्ठकरि जाना। धनमद दंभ अनम्र महाना॥
यज्ञ अविधि नामहि कृत पाई। यजन करन यज्ञों करि जाई॥
अहंकार बल हर्ष अपारा। काम क्रोध आश्रै निज धारा॥
ऐसे उनमे अपर हुँ माहीं। रहे भये मेरे कह ताहीं—॥
द्वैष राखि निंदा मम करहीं। ते आसुर तन पुनि पुनि धरहीं॥
दोहा—क्रूर अधरमी अशुभते। अरू निज द्वैषी मान।
वार वार पटकू तिन्हें। योनि आसुरी जान॥
छन्द—अहो कुन्ती पुत्र वे नर अधम जन्महि जन्म हीं।
योनि आसुरि प्राप्त करते फेरि करि कर्मों वही॥
लोभ क्रोध अरु कामूना यह तीन नरक दुआर है।
रिपु आपने को नाश करने हार तीन तयार है॥

संसार में भरमाने वाला याते इनको सँग तजो।
करहु त्यागन तीनहुँन को आशुही मम पद भजो॥
छूटा भया नर तीनहुँन से सो भला आपन करै।
प्राप्त ताते है परमपद याते यह उर में धरै॥
जोशास्त्र विधिको त्यागि निजइच्छा प्रमाणहि चलिरहा।
सो सिद्धि सुःख न मोक्ष पावत चाल से निज गलिरहा॥
तुमको व्यवस्था कार्य कार्या है प्रमाणहि शास्त्र के॥
सोकरो अरजुन यही युधि कर्म योग्यहि शास्त्र के॥

—:o:—

इति

श्री मद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन
संवादे देवासुर संपद् विभाग योगो नाम षोडशोऽध्यायः॥

सोरठा—दीन बन्धु भगवान। कब मिलि हो यह कीर्तिका।
कब निज पद दै ध्यान। भव रुज कब मेटिहो प्रभू॥

इति

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीमते रामानुजाय नमः

दोहा—गहि दृढ़ श्री गुरुवर चरन। भव उतरन की चाह ॥
दीन बन्धुकरि के दया। दीजें कीर्ति उछाह ॥

अर्जुन वचन

श्लोक—ये शास्त्र विधि मुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ॥
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्व माहो रजस्तमः ॥

दोहा—त्यागि शास्त्र विधि जौन पुनि। श्रद्धामान महान ॥
करै यजन तिन को प्रभू। निष्ठा कौन देखान ॥
सतो गुणी की वह प्रभू। रजो गुणी दरशाय ॥
तमो गुणी की वह अहै। कहहु नाथ समझाय ॥

श्रीभगवान उवाच

दोहा—श्रद्धा तीन प्रकार की। निश्चै अरजुन जान।
सात्विक राजस तामसी। देइ स्वभावहि मान ॥

चौपाई—अंतःकरनहि के अनुरूपा। श्रद्धा होति सुनो तद रूपा ॥
श्रद्धा मय वह पुरुष निहारी। जो जिस श्रद्धाकर अधिकारी ॥
सोवहि होत तौन तस भाई। तात्विक श्रद्धा सात्विक पाई ॥
पूजन देव सात्विकी करहीं। यक्ष राक्षस राजस कर हीं ॥
तामस भूत प्रेत की पूजा। तीनहुँ कृत्तिन की यह पूजा ॥
दंभ अहिंसा युत जो होई। सदा कामना विषयन जोई ॥
इनहीं की सैना सँग माहीं। विहित अशास्त्र करत तप काहीं ॥
सदा शरीर रहत तिनके ही। अज्ञानी जन करत न नेही ॥

भूत समूहन को दुख देहीं। मैं स्थित शरीर दुख तेहीं॥
निश्चे असुर तिन्है अनुमानी। असुर पने में निश्चै जानी॥
आहारहुँ हैं तीन प्रकारा। होत प्रिया सबकर निरधारा॥
औरहुँ तीन यज्ञ तप दाना। तीन प्रकार भेद निरमाना॥
दोहा—बल हुसियारी आयु के। जौन बढ़ावन हार।
अरु अरोग्य ताके सकल। सात्विक लेहु विचार॥
चौ:—अरु मधुरादिक रस युत पाई। सुस्थिर कोमल जो अस खाई।
बहुत काल तक उदर रहाई। बद्धक हृदै सत्विकी पाई॥
अधिक नोन कटु अधिक खटाई। गरमा गरम तीक्ष्णता राई॥
अति रूखे अरु दाहन हारे। राज सीन के प्रिया अहारे॥
दुःख शोक के देवन हारे। पुनि उदार रोगन कृत सारे॥
भात आदि हूँ एक पहर के। और पदारथ ठंढा परिके॥
रस विहीन दुरगंधी छाई। वासी जूँठ तामसी पाई॥
योग्य हमें मख करतब काहीं। समाधान मन करिफल नाहीं॥
करै यज्ञ विधि पूर्वक जोई। यज्ञ सात्विकी है अस सोई॥
जो फल हेत दंभ के नेतू। करै यज्ञ तिन राजस चैतू॥
जो बिन यज्ञ अन्न अनुचित हीं। मंत्र हीन दक्षिणा रहित हीं॥
श्रद्धा रहित यज्ञ पुनि जोई। तामस है यह जानहुँ सोई॥
दोहा—गुरु ब्राह्मण अरु देवता। पुनि विद्वानहुँ काहिं॥
ब्रह्मचर्य शुचिता सरल। अस पूजन तप माहिं॥
चौपाई—यह शरीर सम्बन्धी पाई। तपहै सुनिये अरजुन भाई॥
कारक उद्वेगी जो बचना। सत्य और प्रिय करअस बचना।
वेद पाठ जप मंत्रहु आदी। युत अभ्यास कृति अहलादी॥
तिनके बानी मय जप जानी। हे अरजुन सुन वर विज्ञानी॥
मन प्रसन्न है क्रूरहुँ नाहीं। मित भाषण मनकरि बस माहीं॥
अन्तः करण सुद्ध पुनि होई। यह इतना तप मानस जोई॥

रहित जो फल इच्छा के होई। योज्ञ पुरुष कृत श्रद्धा सोई ॥
सो सात्विक तप तीन प्रकारा। कायिक वाचिक मानस सारा ॥
जो सत्कार मान हित लाई। जप करि अरु पूजा हित लाई ॥
दंभहुँ युत पुनि करव देखाई। ताते नाश मान कहि जाई ॥
जो तप निज निमित्त पीडाकर। अथवा अन्य विगाड़ हेतकर ॥

दोहा—सो तप तामस है लखो। हे अरजुन बुद्धिमान।
कहव और समझाय सब। करि यथार्थ निरमान ॥

चौ०-दान कृत्त जो करन महानी। उत्तम दान करव जो मानी ॥
कुरुक्षेत्रादि तीर्थ में जोई। ग्रहणादिक पुनि कालहुँ पाई ॥
जाते निज उपकार नपाई। यह विधि देंइ दान हरषाई ॥
अथवा जप रक्षक कृत हेरी। देइ दान कृत सात्विक केरी ॥
प्रत्युपकार हेत जो देई। ग्रह इत्यादि हेत मुद मोई ॥
उग्रदान ग्रह हेत विचारी। लेहु याहि राजसी निहारी ॥
तिरस्कार युत दान जो करहीं। और अवज्ञा पूर्वक करहीं ॥
तथा कुपात्र देश बिन काला। देत दान सो तामस वाला ॥
ओंतत् सत् यह तीन प्रकारा। निश्चे जान वेद निरधारा ॥
ओंकार कृत कर्म मिलाई। स्वीकार तहँ उचित लखाई ॥
तत् यह शब्दहुँ से पुनि पाई। परमेश्वर कृत कर्म कमाई ॥
सत् से श्रेष्ठ कर्म लखि जाई। साधु वृत्ति से करता पाई ॥
याहि वेद निश्चे दरशाई। वह निश्चे कृत विप्र सोहाई ॥
वेद कर्म करता वह मानी। तीन वरणहुँन ते यह बानी ॥

दोहा—ईश्वरार्थक कर्म को। कीन वेद प्रति पाद।
यज्ञ दान जो सत करम। पूर्व काल मैं वाद ॥

छंद—जिस हेत वादी वेद वर्णन कर्म तीनौ को करै।
तिस हेत ओं मिति शब्द कहि स्वीकार कर्मन को धरै ॥

दान क्रिया तप यज्ञ की रहती निरंतर वृत्ति ही।
वर्ण तीनों की कही विधिवेद वादी कृत्ति ही॥
परमेश्वरार्थक शब्द तत् फल का य अनुसंधान करि।
तपयज्ञ दान क्रिया अनेक प्रकार ईश्वर हेत धरि॥
यह मोक्षचाहन हार की है क्रिया अरजुन जानिये।
सत सब्द यह है श्रेष्ठ कर्मी साधु भाव सु मानिये॥
यज्ञ तप अरु दान हूँ अस्थित सो निश्चे जानिये।
सत शब्द ऐसा कहत अर्जुन भाँति बहु अनु मानिये॥
जो ईश्वरार्थक कर्म है निश्चे यही से सत् कहा।
इन चतुश्लोकन में ओंतत् सत् क निश्चे सब कहा॥
अहो कुन्ती तनय जो श्रद्धा बिना का हवन है।
भया दान दिया तपातप सो निरर्थक तवन है॥
क्रिया भया पुनि कर्म हूँ है असत् सोई जानिये॥
यह लोक अरु परलोक में नहिं सुखद कार नुमानिये॥

इति

श्री मद्भगवतगीता सूप निषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे
श्री कृष्णार्जुन संवादे श्रद्धात्रय विभागो नाम सप्त दशोऽध्यायः।

दोहा—दैदीजै करुणा निधे। चरण कमल सुख दान॥
कीरति की विनती यही। सुनहु कृष्ण भगवान॥
श्री मन्दीनानाथार्पणमस्तु शुभम् भूयात्॥

इति

अठारहवाँ अध्याय

॥ श्रीमते रामानुजायनमः ॥

सोरठा—दीन जानि मोहि नाथ । सिरि गुरु परम दयाल तुम ।
गहि कीरति कर हाँथ । भव गिरतें राख्यो प्रभू ॥

॥ अर्जुन बचन ॥

श्लोक—संन्यासस्य महा वाहो तत्व मिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषी केश पृथक्केशि निपूदन............॥

दोहा—अहो महा वाहो प्रभू, हृषी केश सुनि लेहु ।
केशि निसूदन कहहु अब, त्याग, तत्व कर भेहु ॥

॥ श्री भगवानुवाच ॥

श्लोक—काम्यानांकर्मणां न्यासं संन्यासंकवयोविदुः ।
सर्व कर्म फलं त्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥

दोहा—सारा सार बिचार के । जे कवि हैं मति मान ॥
कर्म कामना हार जो । तिन कृत छोड़ब जान ॥

चौपाई—ते छोड़न जानत संन्यासू । औरहुँ ज्ञान बिचक्षण जासू ॥
तत्त्वज्ञान विशेष भराई । कर्म त्याग फल त्यागत भाई ॥
तह कोउ एक पुरुष पुनि ज्ञानी । दोष देखाय कर्म कृत वानी ॥
त्यागव कर्म कहैं भल होई । कितने एक कहैं इमि सोई ॥
दान यज्ञ तप कर्म न काहीं । त्यागन करब अहै भल नाहीं ॥
अहो भरत. सत्तम मम वानी । कर्म त्याग मे निश्चै मानी ॥
तीन प्रकार त्याग यह होई । मम बानी ताते यह जोई ॥
यज्ञ दान तप तथा कर्म को । है यह योग्य न त्यागन भय को ॥
दान यज्ञ तप तीनहुँ भाई । ज्ञानिन हूँ शुचि करत महाई ॥

तजि ममता यज्ञादिक कर्मा । फल को त्यागि करब है धर्मा ॥
निश्चै किया भया मम सोई । यह मत है हमार तेहि जोई ॥
कारण जो नियमित सन्ध्या है । पंच महा यज्ञ हुं धन्धा है ॥
दोहा—कर्म त्याग तिनका नहीं । होय सकै मति मान ॥
किया त्याग यदि मोहसे । सोहै तामस जान ॥
चौ०-जो शरीर भय करि दुख मानी । त्यागहिं कर्म सो राजस जानी ॥
ऐसे कर्म त्याग जो करहीं । फल कृत त्यागी नहिं अनुसरहीं ॥
करन योग जो कर्महि मानी । ममता रहित बुद्धि अनुमानी ॥
नियमितधर्म त्यागि फल आसा । करे कर्म सो सात्विक भासा ॥
सब गुन युक्त बुद्धि जिन माहीं । संशय रहित कर्म फल नाहीं ॥
सो संसार कर्म कृत नाहीं । निंदत नहि नहि कुशल कहाहीं ॥
यज्ञादिक कर्मन के माहीं । रहत असक्त सदा मुद माहीं ॥
ताते देह धारिनहुँ माँहीं । कर्म त्याग होवन का नाँहीं ॥
कर्म कृत्ति जो छोड़न हारा । ताको यह विधि सकल निहारा ॥
अप्रिय प्रिय मिश्रित यह तीना । करमन फल प्रकार यह चीना ॥
अनुरागी फल कर्मी जोई । होत हमारे कृत वह सोई ॥
फल कर्मी त्यागी कृत जानो । होत कहूँ का नहिं वह मानो ॥
दोहा—यह कारण तहँ पाँच हूँ । सांख्य योग सिद्धान्त ॥
कहा सर्व सो कर्म के । सत्य पार्थ सिद्धान्त ॥
चौ०-हे अर्जुन फिर सुनमम बानी । कहत तुम्हार हेत भल मानी ॥
आधिष्ठात शरीरहि जानो । कर्त्ता जीव भली विधिमानो ॥

ब्रह्म सूत्र

॥ ज्ञात एवच कर्त्ता शास्त्रार्थत्वात् ॥
ब्रह्म सूत्र प्रमाण यह सोई । भिन्न भिन्न करणहु पुनि जोई ॥
मन युत पांच इन्द्रियाँ भारी । अति व्यापार चेष्टा न्यारी ॥

पाँच प्राण वायुन की सोई । अहै चेष्टा अरजुन जोई ॥
पचवा दैव सर्व का स्वामी । सोई मैं हूँ अन्तर्यामी ॥

परात्तु तच्छुतेः

ब्रह्म सूत्र प्रमाण दरसाई । सर्व भाँति इन्द्रियन बुझाई ॥
मन शरीर बानी कृत होई । न्याय और अन्यायहुँ सोई ॥
जो आरम्भ कर्म कृत पाई । तिनके कारण पाच लखाई ॥
यह सिद्धान्त भयहु पर माहीं । केवल कर्त्ता आत्मा काहीं ॥
जो जानत बुधिहीन लखाई । अरु दुर्बुद्धी पुरुष महाई ॥
है यथार्थ निश्चे करनाहीं । तातें कुछ जानत सो नाहीं ॥

दोहा—जाके हैं नहि निज कृतै । कर्त्तापन कर भाव ।
कर्म लिप्त बुद्धी नहीं । सोसब कृति फल पाव ॥

चौ०—सोसब लोकनहूँ को मारी । नहि मारत औ नहि अघभारी ॥
तुम भीष्मादिक वधकृत डरहू । ममता अहं रहित युधि करहू ॥
जो स्वधर्म से युद्धि कराई । तिन कृत पुन्य पाप नहि राई ॥
करतब कर्म जान सोइ ज्ञाना । श्रेय परिज्ञाता कृत जाना ॥
सम्यक कर्म परी ज्ञाता को । जाननहार सुतीन तरा को ॥
शास्त्रिय विद्या तीन प्रकारा । कर्म करत कृत करण उचारा ॥
साधन सामग्री कहवाई । यज्ञ श्रुवा आदिक सो पाई ॥
शास्त्रादिक युधि कर्म कहाई । कारण करता कर्म लगाई ॥
संग्रह तीन प्रकार कर्म से । विगड़ी इनसे वनिहै इनसे ।
ज्ञान कर्म अरु कर्त्ता होई । सांख शास्त्र गुण तीनहि जोई ॥
ब्राँह्मण क्षत्रिय ज्ञान जौन से । भाव एक देखत आतम से ॥
सर्व समान आत्मा हेरी । एक भाव अविनाशी केरी ॥
इमि है जिनमे भाव समाना । सो सात्विकी अहै निरमाना ॥

दोहा—उत्तम मध्यम छोट करि। जो इमि जीवन भाव ॥
उत्तम मध्यम आतमहूँ। लखत भिन्न करि न्याव ॥

चौ०—इमि न्यारेपन करि जो जाना। सो राजस कृत है वह ज्ञाना ॥
जोहै कर्म एकहीं सुक्ता। और सर्व फल कृत हैं युक्ता ॥
सर्व निरर्थक कारण जाना। भूत अराधन कृत है ज्ञाना ॥
सो तामस वह ज्ञान कहाई। हे अरजुन सुनिये चित लाई ॥
जो फल इच्छा कर्मन लाई। राग द्वेष विन क्रिया बनाई ॥
फल सँग रहित कर्म अस होई। ताहि सात्विकी जानहु सोई ॥
जो अति श्रम युतकर्म कमाई। और कामना प्राणी लाई ॥
अहंकार युत कर्म जो होई। सोऊ अहै राजसी जोई ॥
कर्म परिश्रम अरु दुखदाई। धनक्षय प्राणी पीड़ा लाई ॥
निज पुरुषारथ के विन देखे। कर्म अरंभ तामसी लेखे ॥
रहित असक्ति कर्मफल जिनकी। कर्तापन अभिमानन तिनकी ॥
धीरज अरु उत्साह समेतू। सिद्धि असिद्धि विकारन चेतू ॥

दोहा—सिद्धि असिद्धि नहीं कछू। निर्विकार मन होय ॥
सो कर्त्ता है सात्विकी। लीजे अर्जुन जोय ॥

चौपाई—जो आसक्त कर्म के माहीं। लोभी खर्चे यथारथ नाहीं ॥
हर्ष शोक युत अशुचि सदाही। प्राणी पीड़ा कृत दरशाहीं ॥
फल करमन की चाह मिलाई। अस करता राजसी कहाई ॥
जो नहि योग्य शास्त्र कर्मन मे। अरु अनम्र नहि विद्या जिनमें ॥
मरणादिक कर्मन में भारी। ठग आलसी बिषाद भँडारी ॥
यकक्षण कार्य एक दिन लाई। सोकर्त्ता तामसी कहाई ॥
अब संपूर्ण पने कृत मेरा। सुनो धनंजय भेद घनेरा ॥
भिन्न भिन्न गुण तीनि प्रकारा। बुद्धि और धीरज कृत सारा ॥
बुद्धि निवृत्ति प्रवृत्तिहुँ पाई। कार्य अकार्य उभय भै जाई ॥

बंध मोक्ष कृत जानन हारी । सो सात्विकी बुद्धि निर धारी ॥
धिय जो उलटी जानन हारी । सो बुद्धी राजसी निहारी ॥
दोहा—जो अज्ञानन कृत ढकी धर्म अधर्म न भान ॥
सर्व अर्थ उलटा लखै । सो बुद्धि तामस जान ॥
छन्द—जो है अखंड अरु मोक्ष साधन रूप की करि धारणा ।
योग बलमे प्राणमन इन्द्रिन क्रिया करि धारणा ॥
सो सात्विकी है धारणा अर्जुन सुनोमन राखि के ।
पुरुष इच्छा फल कि जिनमें धारणा उर धारि के ॥
जिस धारणा युत काम धर्म अरु अर्थ को धारण करै ।
सो धारणा वह राजसी है याहि की यह कृत सरै ॥
जिस धारणा करि दुष्ट बुद्धी स्वप्न भय अरु शोक की ।
मद विषाद न त्यागता धारण व तामस शोक की ॥
दोहा—भरत श्रेष्ठ अर्जुन सुनो । सुखहूँ तीन प्रकार ॥
सो तुम प्रति समझाय के । कहि हों युत विस्तार ॥
चौ०-करि अभ्यास रुकैमन जबही । है अपूर्व सुख अर्जुन तबहीं ॥
दुःख नासहै तेहि सुखमाहीं । प्रथम तुल्य विषके दर्शाहीं ॥
अन्त तुल्य अमृत के होई । जसअस सुख कृत अनुभव जोई ॥
आत्मा बुद्धि प्रसन्न महाई । अससुख सो सात्विकी कहाई ॥
जो संयोग विषय इन्द्रिन से । प्रथम अमृत अरु अन्त जहर से ॥
अस सुख सो राजसी कहावै । सुन अर्जुन यह सुःख प्रभावै ॥
जोनिज मोहक अन्त प्ररंभक । निद्रा आलस अरु प्रमाद तक ॥
सो तामसी सुःख कहवाई । पाँडु सुवन जानहु मन लाई ॥
जौन वस्तु प्रकृतीकृत जाई । सतरज तम से मुक्त लखाई ॥
पृथ्वी अथवा स्वर्गहु मांहीं । फिर वह है देवन में नाहीं ॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सूद्रके । है स्वभाव गुण कर्म भिन्न के ॥
समपुनि बाह्यइन्द्रियन काहीं । अन्तः करणहुँ दमतैसाहीं ॥

दोहा—तप शास्त्रोक्त वृतादि कहि । शौच वाह्य कृत जान ॥
क्षमा सरलता ज्ञान हूँ । आभ्यंतर कृति मान ॥

चौपाई

स्वस्वरूपहिं अरुपर स्वरूप को । जानन ज्ञान कहत यह कृतको ॥
ज्ञान स्वरूप भये पर जोई । परमेश्वर कृत भक्ती होई ॥
ताको करि विज्ञान बखाना । आस्तिक्य कृत अवनिरमाना ॥
वेद शास्त्र वाक्यन में होई । दृढ़ विश्वास भाव कृत जोई ॥
यह द्विज कर्म अहै सुखदाई । निज स्वभाव से पड़े देखाई ॥
शूरपना अरु तेज महाना । चतुराई अरु धीरज माना ॥
भागव युद्धिहुँ से पुनि नाहीं । अरु उदारता भरी देखाहीं ॥
राखव प्रजा सदा स्वाधीना । क्षत्री कृत स्वभाव लखु पीना ॥
कृषि गोपाल न वाणिज करना । वैश्य स्वभाव कर्म अनुसरना ॥
सेवा तीनहुँ वरणन केरी । यह कृति सूद्र स्वभावहि हेरी ॥
ऐसहि निज-निज कर्मन माहीं । लगे भये मानुष सिधि पाहीं ॥
पुरुष स्वकर्म निष्ट जेहिमाहीं । मुक्ती लहत कहव तुम पाही ॥
दोहा—भूत जीव उत्पत्ति को । रक्षण जेहि विधि होय ॥
सो ईश्वर सर्वत्र है । व्याप्त पूजि फल सोय ॥
चौ०—कर्म स्वभावज करि तिन माहीं । ईश्वर पूजि परम पद जाहीं ॥
अति उत्तम पर धर्म जुहोई । न्युन धर्म निजहीं भल जोई ॥
निज जातिन में कर्म सोहाई । सोन पाप कृत प्राप्त जनाई ॥
हिंसात्मक है धर्म तुम्हारा । तवहूँ तत्र कल्यान अपारा ॥
दोष युक्त निज धर्म वर्ण को । सोत्यागव नहिं उचित कर्म को ॥
सकल ज्ञान कर्मादि अरंभा । दोष धुवानल युक्तिहुँ संभा ॥
सर्व कर्म कृत बुद्धी काही । है आसक्त करब भल नाहीं ॥
वाँछा रहित स्ववस मन करहीं । परम सिद्धि निस्कर्म सुधरहीं ॥
आत्म ज्ञान से जेहि बिधि जाई । सो सुन कुन्ती पुत्र बनाई ॥

जो ध्यानात्मज्ञान की भारी। निष्ठा सीमा कहूँ उचारी॥
सोवह सुद्धि बुद्धि संग लाई। करै धारणा मन बस पाई॥
शब्दादिक विषयन को त्यागी। द्वेष राग कृतहूँ सब त्यागी॥
दोहा—एकान्तहिं में बैठि पुनि। खाय अल्प आहार॥
वाणी और शरीर को। पुनि मन वसमें धार॥
चौ०—नित्य ध्यान करि योगपरायण। धरे भये वैराग्य उरायण॥
बल अरु दर्प सर्व हंकारा। काम क्रोध ममता से न्यारा॥
निर्मम शांति पुरुष सोपाई। आतम ज्ञान यहि भाँति कहाई॥
आतम ज्ञान छोड़ि नहिं आना। मोहिं तजि अन्य वस्तु नहि माना॥
सर्व भूत सम दृष्टी जोई। अति उत्तम मम भक्ती होई॥
जगत शरीर सबै भूतन की। परम विभूति जानिकै जनकी॥
पक्षरहित सब हमको जानै। करि असमर्थ मोद अति मानै॥
यह निज स्वामी के सब मानी। है यह परम भक्त की बानी॥
हूँ मै जौन विधिहुँ मम जोई। भक्ती युक्त लखत हूँ सोई॥
निश्चे जबै जानि हमें काहीं। तबहीं मोक्ष प्राप्ति दरशाहीं॥
आश्रित जन हमार सब माहीं। लौकिक वैदिक कर्मन काहीं॥
करता भया अनुग्रह मेरे। नाश रहित पद मुक्ती हेरे॥
दोहा—सोमे परायण भये। चित्त मोहि मे धार॥
मोहि मे अर्पै कर्म सब। स्थित आश्रै कर भार॥

छन्द भुजंग प्रयात

हमारे मे चित को लगाये रहोगे।
अनुग्रह हमारी से दुख से तरोगे।
कदाचित अहंकार उसमे धरोगे।
ये उपदेश मेरा ग्रहण ना करोगे।

जो आशय अहंकार मन मे करोगे ।
करूँ युद्धि नाहीं ये उर मे भरोगे ॥
तो तू नष्ट आपहि को अर्जुन करोगे ।
जो विपरीत वाणी हमारी धरोगे ॥
ये निश्चे तुम्हारा बृथा सब करेगा ।
है क्षत्री स्वाभाविक बिवस युधि करेगा ॥
जो संग्राम यदि मोह से ना करेगा ।
तो क्षत्री स्वधर्मों से रण कृत सरेगा ॥
विजै आप कर्मों मे निजहीं बँधेगा ।
भये फेर पर वस तुहीं युधि करेगा ॥
ये माया का जन्तर तेरा देह सारी ।
भ्रमाता फिरे जो शरीरी को भारी ॥
सो अस्थित है उर में तुलीजै निहारी ।
है अस्थल हृदै ताको भूतन मझारी ॥
अहो भार्त उरधर सखा भावना को ।
व परमात्मा के शरण जाके ताको ॥
वही के अनुग्रह परम शांति पावो ।
वही के अनुग्रह सनातन को जावो ॥

दोहा—यह गोप्यहु से गोप्य जो । ज्ञान कहा तुम पाहि ॥
निश्चे करि अर्जुन इसे । कहु आवे मन ताहि ॥

चौ०-याहि भली विधिसे पहिचानी । जोमन आवैराखहु मानी ॥
परम वाक्य गोप्यन मे जोई । सुनो बहुरि अर्जुन मुद मोई ॥
अति दृढ़ प्रिया सखा तुम मेरे । ताते उपदेशत तुम नेरे ॥
मन लगाय मेरे प्रति राखो । भक्त मोर है अमृत चाखो ॥
करनहार पूजन मम होहू । युक्त हृदय करि मोहि तजि मोहू ॥
इमि करि प्राप्ति मोर ढिंग पाई । सत्य बचन यह अर्जुन भाई ॥

धर्ममंत्र श्लोक

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्ष यिष्या मिमाशुचः ॥
सर्व धर्म फल को करि त्यागा । मोंहि अर्पि सब होहु सभागा ॥

× × ×

यत्करोषि यद श्नाशि इत्यारम्यतत्कुरुष्वमदर्पणम् ॥

× × ×

सर्व अर्पि याही विधिदेहु । शरण मुख्य हमार गहि लेहु ॥

× × ×

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मान वः ॥

× × ×

यह प्रमाण मोहि पूज्य निहारी । तथाप्राप्य मोहि कृतहि विचारी ॥
पूजन मुनिमम जानि महाई । निज कुल उचित युद्धि कर भाई ॥
यह रण मे तुमको हम सोई । भीष्मादिक मारण अघ जोई ॥
करब मुक्त पापन से आसू । शोचहु मति मोहि लखि निज पासू ॥
दोहा कोऊ यह अश्लोक को । अर्थ काढ़ि यह लीन ॥
विद्वदभूषण कहि यही । चतुर्मास्य दृढ़ कीन ॥

॥ चौपाई ॥

चतुर मास्य कोउ त्यागन कहहीं । तर्पण पितर आदि कोउ कहहीं ॥
कर्म धर्म कर त्याग महाना । मोरे शरण होय कल्याना ॥
ममको अरु निजको सम्पाई । भाव येक ही अर्थ लगाई ॥
भक्ती यकता ज्ञान रूप की । तब बिचार यह चही होन की ॥

अथमतो

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्यु दाहृतः ।
यह इत्यादि प्रमाण लगाई । जीव ब्रह्म यकतानहि पाई ॥
मुक्त भयेहूँ पर यह नाहीं । यकता होव नहीं दर्शाही ॥
ममसाधर्म्य मागताः और भोग मात्र साम्यलिंगाच्च तथा ॥
निरंजनः परम साम्य मुपैति ॥
गीता ब्रह्म सूत श्रुति माहीं । भोगादिक समता दरशाही ॥
यकता की समता है नाहीं । जहँ यकता तहँ भावहु याही ॥
अन्तरयामी भाव लगाई । ताही क्त समता लखि जाई ॥

॥ अथवा द्वासुपर्णा ॥

यह प्रमाण श्रुति सेतहँ पाई । सखा भाव पन यहौ बताई ॥

दूसरे भजसेवायां

धातु सव्द भक्ती क्त होई । सोयकता सेवा किमि जोई ॥
याते जीव भिन्न दरशाहीं । ईश्वर के स्वाधीन लखाहीं ॥
दोहा—सिद्ध भया अब यह यहाँ, समताहै नहि सोय ।
किंतु सिद्धि यह नहि भया, समहित आज्ञा जोय ॥
चौ०—आज्ञा दीन जौन प्रभु एही । भक्ती मम निज से सम जोही ॥
तहँ यह अर्थ सिद्ध नहि होई । धर्म त्याग की है विधि जोई ॥

तहाँ श्लोक

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे + श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः
स्वधर्मे निधनंश्रेयः ॥

❀ ❀ ❀

यह इत्यादि वाक्य क्त जोई । अहैं विरोधी पुनि तिहँ जोई ॥
सर्व धर्म का अर्थ यही है । त्याग सर्व फल सिद्धि यही है ॥

ईश्वर कृत पूजन निसकामा । यहै सिद्ध सब भाँति ललामा ॥
यह याही अध्यायहि माहीं । है प्रमाण लखु संशय नाहीं ॥
श्लोक—निश्चयं श्रृणु में तत्र त्यागे भरत सत्तम । त्यागोहि पुरुष
व्याघ्र त्रिविधः परि कीर्तितः । यहाँ से लेके ।
संगंत्यक्त्वा फलं चैव सत्यागः सात्विको मतः ।—
यश्तु कर्म फलं त्यागी सत्यागीत्य भिधीयते ॥

चौपाई

अस प्रमाण औरहुँ बहु भाँती । चलहि सुज्ञजन लखि यहि पाँती ।
यह उपदेश गोप्य मम सोई । हे अरजुन तुम राखेहु गोई ॥
जो जन तपकृति नहि उरधारी । तिन प्रति यह जनि कहेउ उचारी ॥
मम मम जनकर भक्तन जोई । तिनसो कहव उचित नहिं होई ॥
जो गीता उपदेष्टा केरी । कीन न सेवा तिन्हें न हेरी ॥
जो मम निंदक है पुनि कोई । कहब उचित नहिं तिनसे होई ॥
दोहा—परम गोप्य जो शास्त्र यह, गीता मोर प्रधान ।
करि प्रसिद्ध मम जनन में, सो मम प्रिया महान ॥

छन्द भुजंग प्रयात्

करै मम जनो में जो गीता प्रचारा ॥
नतासे प्रिया अन्य को हो विचारा ॥
जो संवाद गीता हमारा तुम्हारा ॥
करैं अध्ययन मानो पूजन हमारा ।
जोनिंदा रहित और श्रद्धा से मेरी ॥
सुनै ज्ञान गीता कटे जन्म बेरी ।
अहो हे पृथा पुत्र वतलावो हमसे ॥
ये गीता को मेरी सुना ध्यान मन से ।
सखा हे घनंजय तु यद्यपि सुना है ॥

तो अज्ञान कृत मोह छूटा कि ना है ।
भया हो तेरा मोह जो नष्ट भारी—॥
तो निश्चैं कहो मैं सुनूगा तुम्हारी ॥

अर्जुन उवाच

छन्द भुजंगप्रयात

हे अच्युत सुनो ये बिनै है हमारी ॥
भया नष्ट है मोह महिमा तुम्हारी ॥
किया प्राप्त अब ज्ञान सन्देह छोड़ी ।
अस्थित हुँ सब भाँति अज्ञान तोड़ी ॥
स्वधर्मी वचन आप का यह मुरारी ।
करूंगा मे अब युद्धि पद आस धारी ॥

संजय वचन

दोहा—सिरी कृष्ण भगवान अरु, अर्जुन कृत संवाद ।
अति अद्भुत श्रवनन सुना, रोमांचित अहलाद ॥
स्वयम् सुना प्रत्यत्तहीं, यह अति गोप्य महान ।
व्यास देव की कृपा से, समझ्यों गीता ज्ञान ॥

सोरठा—सिरी कृष्ण भगवान । योगेश्वर के मुख सुना ॥
व्यास कृपा कृत जान । मै पायो परशाद यह ॥

दोहा—हे राजन तुम जानहू, यह संवाद अपार ॥
यामे पुन्य महान है, शुमिरि हर्षि वहु वार ॥
अस अद्भुत भगवान का, रूप अपूर्व निहार ॥
होवत अति विस्मय हमें; महिमा अपरम्पार ॥
जहँ योगेश्वर कृष्ण है, अरु अरजुन धनुधार ॥
तहाँ सम्पदा अचल है, निजै कीर्ति [illegible] ॥

वैभव युत सब नीति हूँ, अचल रहै सति मान ॥
मत हमार निश्चे नृपति, कीर्ति कृष्ण सुखदान ॥
॥ इति ॥

श्री मद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योग शास्त्रे
श्री कृष्णार्जुन संवादे मोक्ष सन्यास योगो नाम
अष्टादशोऽध्यायः

दोहा—'कीरति' पायो पद कमल। दीनानाथ कृपाल ॥
अब चिन्ता भव की नहीं। मिटा विषाद विशाल ॥
श्रीमन्दीनानाथार्पण मस्तु-शुभम् भूयात।

लेखिका —कीर्ति देवी
रीवा राज्य

ज्ञान दीप

शुद्धिपत्र

नं० पेज	नं० पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	४	अहलादक	अहलादिक
८	१२	कृतकान	कृतकीना
१५	१८	कापिध्वज	कपिध्वज
२४	१३	वह	यह
२६	५	कारणहुँ	कारणहूँ
३८	१५	घरहीं	धरहीं
३६	१५	यान	ज्ञान
४१	६	वैवस्वतमनहु	वैवस्वतमनुहि
४१	१३	दान बुझाय	दीनबुझाय
४६	४	गाता	गीता
५३	११	आछन्द	अछन्द
५५	५	जोगा जौन	योगी जौन
५७	२०	है	ह्वै
७०	१३	छूटे	छुटे
७०	१६	वगत	जगत
७०	२२	भुत	भूत
७१	६	शृजताहूँ	शृजताहुँ
७१	२०	कर्मो	कर्मी
७२	२३	धारण	धार्णं
७४	२४	वैष्यति	वैश्यसि
८१	४	सम	मो

नं० पेज	नं० पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८३	८	सर्वात्तम	सर्वोत्तम
८५	९	प्रदींप	प्रदीप्त
८६	१६	ये अजुर्न वीरा	हे अर्जुनवीरा
८७	१	तप	तव
९५	१९	सामवेदौ की	सामवेदोंको
९८	८	वृति	वृत्ति
१०६	२२	देहु	देहूँ
१०८	२३	अप	अरु
१११	१६	सत्यहूँ	सत्यहुँ
११६	९	जोई	जाई
१२५	११	तेरा	तेरी
१२५	२४	अमृत	अमृत
१२६	६	लेहु	लेहू
१२६	६	देहु	देहू
१२९	२३	कृष्णहै	कृष्णहैं